ॐ

श्री नेमिनाथाय नमः

गौतम चरित्र

मूल लेखक :
मण्डलाचार्य श्रीधर्मचन्द्र

अनुवादक :
नन्दलाल जैन 'विशारद'

सम्पादन :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियां, भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

प्रकाशकीय

वीतरागी जिनेन्द्र परमात्माओं की दिव्यवाणी का प्रवाह चार अनुयोगों—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग के रूप में निबद्ध है। हमारे वीतरागी सन्तों और ज्ञानी-धर्मात्माओं की निष्कारण करुणा से प्रसूत दिव्यध्वनि के साररूप जिनवाणी हमें उपलब्ध है, यह हमारा अहो भाग्य है।

चार अनुयोगों में से प्रथमानुयोग हमारे पुराण पुरुषों की आत्मसाधना का परिचय प्रदान कर हमें बोधि समाधि की पावन प्रेरणा देता है। संसार की विचित्रता, पुण्य-पाप का फल और महन्त पुरुषों की प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराते हुए भव्य जीवों को स्वभाव सन्मुखता की प्रेरणा ही इसका एकमात्र प्रयोजन है।

मण्डलाचार्य श्रीधर्मचन्द्र द्वारा रचित यह 'गौतम चरित्र' भगवान महावीर के प्रमुख गणधर एवं मंगलाचरण में वीर प्रभु के पश्चात् द्वितीय स्थान को प्राप्त महापुरुष का पवित्र जीवन चरित्र है। जिसे पढ़कर पाठकों को आश्चर्यसहित आह्लाद होगा कि गौतम गणधर ने पूर्व भव में विशाल राज्य के अधिपति एक राजा की रानी के भव में किस प्रकार पतित होकर दुराचरण किया और संसार परिभ्रमण करके दीन-हीन कन्याओं की पर्याय में मुनिराजश्री से व्रत अंगीकार कर सत्पथ की ओर कदम बढ़ाया। कालान्तर में वही जीव वेद शास्त्र का पारगामी गौतम ब्राह्मण के रूप में अवतरित हुआ, जिन्हें भगवान महावीर के समवसरण में मानस्तम्भ के दर्शन करते ही स्वयं की सहज उपादानगत योग्यता से सम्यक्दर्शन की विशुद्धि के साथ-साथ चार ज्ञान का उघाड़, गणधरपद की प्राप्ति हुई जो ६६ दिन से नहीं खिर रही प्रभु की दिव्यध्वनि के खिरने का निमित्त बनी।

यह सम्पूर्ण जीवनचरित्र परिणमन व्यवस्था की क्रमबद्धता एवं

पर्याय की तत्‌समय की योग्यता जैसे आत्महितकारी सिद्धान्तों का बोध प्रदान करने के साथ ही किसी भी जीव की निकृष्ट पर्याय कब शुद्ध चैतन्य के लक्ष्य से परमपवित्रता को प्राप्त कर लेती है, इसका जीवन्त उदाहरण भी प्रस्तुत करती है। अत: किसी जीव की दीन-हीन या विपरीत पर्याय देखकर उसके प्रति राग-द्वेष करना कदापि श्रेयस्कर नहीं है यह प्रेरणा भी इस चरित्र से प्राप्त होती है।

हमारे जीवनशिल्पी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी एवं तद्‌भक्तरत्न प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन को महा पुरुषों के प्रति सहज ही अहोभाव उमड़ता था, जिसके प्रत्यक्ष दर्शन उनके प्रवचन एवं तत्त्वचर्चा में होते हैं। उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त कर यह प्रस्तुत ग्रन्थ 'गौतम चरित्र' लोकार्पित किया जा रहा है।

तदर्थ हम ग्रन्थकार मण्डलाचार्य श्रीधर्मचन्द्र एवं पूज्य गुरुदेवश्री तथा बहिनश्री के प्रति अपना हार्दिक बहुमान हर्षपूर्वक व्यक्त करते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ का मूल प्रकाशन श्री जिनवाणी प्रकाशन कार्यालय कोलकाता द्वारा बहुत वर्षों पूर्व किया गया था, जो अभी अनुपलब्ध है। इसी कारण यह संस्करण आवश्यक सम्पादन एवं भाषा शुद्धि के साथ उपलब्ध कराया जा रहा है। इस कार्य को पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन (बिजौलियां-राजस्थान) ने साकार किया है।

सभी साधर्मीजन इस चरित्र ग्रन्थ का स्वाध्याय कर निज-हित साधन करें - यही भावना है।

ट्रस्टीगण

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

मुम्बई

विषय सूची

	अध्याय	पृष्ठ
1.	प्रथम अधिकार	1
	कथा आरम्भ	3
	वीर प्रभु के दरबार में महाराज श्रेणिक का प्रश्न	8
2.	द्वितीय अधिकार	14
3.	तीसरा अधिकार	41
4.	चतुर्थ अधिकार	49
5.	पंचम अधिकार	69

ॐ

श्री नेमिनाथाय नमः

मण्डलाचार्य श्री धर्मचन्द्रकृत

❀ गौतम चरित्र ❀

प्रथम अधिकार

– मंगलाचरण –

अर्हन्त नौम्यहं नित्यं मुक्तिलक्ष्मीप्रदायकम्।
विबुधनरनागेन्द्रसेव्यमानम्पदाम्बुजम्॥1॥

जो अरहन्त भगवान मोक्षरूपी सम्पदा प्रदान करनेवाले हैं, जिनके चरण कमलों की सेवा नर–नागेन्द्रादि सभी किया करते हैं, उन्हें मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ।

जो सिद्ध भगवान कर्मरूपी शत्रुओं के संहारक हैं, सम्यक्त्व आदि अष्टगुणों से सुशोभित हैं तथा जो लोक शिखर पर स्थित हो सदा मुक्त अवस्था में रहते हैं, ऐसे सिद्ध परमेष्ठी भगवान हमारे समस्त कार्यों की सिद्धि करें।

जिनेन्द्रदेव महावीरस्वामी, महाधीर वीर और मोक्षदाता हैं एवं महावीर, वर्द्धमान, वीर, सन्मति जिनके शुभ नाम हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।

जो इच्छित फल प्रदान करनेवाले हैं, जो मोहरूपी महाशत्रुओं

के संहारक हैं और मुक्तिरूपी सुन्दरी के पति हैं, ऐसे महावीरस्वामी हमें सद्बुद्धि प्रदान करें।

भगवान जिनेन्द्रदेव से प्रकट होनेवाली सरस्वती, जो भव्यरूपी कमलों को विकसित करती है, वह सूर्य की ज्योति की भाँति जगत के अज्ञानान्धकार को दूर करे। श्री सर्वज्ञदेव के मुख से प्रकट हुई वह सरस्वती देवी सरल कामधेनु के समान अपने सेवकों का हित करनेवाली होती है, अत: वह देवी हमारी इच्छा के अनुसार कार्यों की सिद्धि करे।

जो भव्योत्तम मुनिराज सद्धर्मरूपी सुधा से तृप्त रहते हैं, और परोपकार जिनका जीवन व्रत है, वे मुझ पर सदा प्रसन्न रहें। जो कामदेव सरीखे मतंग को परास्त करनेवाले हैं, जो काम-क्रोधादि अन्तरंग शत्रुओं के विनाशक हैं, जो संसार महासागर से भयभीत रहते हैं, ऐसे मुनिराज के चरण कमलों को मैं बारबार नमस्कार करता हूँ। जो भव्यजन दुष्टजनों के वचनरूपी विकराल सर्पों से कभी विकृत नहीं होते एवं सदा दूसरे के हित में रत रहते हैं, उन्हें भी मैं नमस्कार करता हूँ। साथ ही जो दूसरों के कार्यों में सदा विघ्न उत्पादन करनेवाले हैं तथा जिनका हृदय कुटिल है और जो विषैले सर्प के समान निन्दनीय हैं, उन दुष्टजनों के भय से मैं नमस्कार करता हूँ।

अपने पूर्व महाऋषियों से श्रवण कर और भव्यजनों से पूछकर मैं श्री गौतमस्वामी का पवित्र चरित्र लिखने के लिए प्रस्तुत होता हूँ, जो अत्यन्त सुख प्रदान करनेवाला है। किन्तु मैं न्याय, सिद्धान्त, काव्य, छन्द, अलंकार, उपमा, व्याकरण, पुराण आदि शास्त्रों से सर्वथा अनभिज्ञ हूँ। मैं जिस शास्त्र की रचना कर रहा

हूँ, वह सन्धि-वर्ण शब्दादि से रहित है। अतएव विद्वान पुरुष मेरा अपराध क्षमा करते रहें। जिस प्रकार यद्यपि कमल का उत्पादक जल होता है, पर उसकी सुगन्धि को वायु ही चारों ओर फैलाती है; उसी प्रकार यद्यपि काव्य के प्रणेता कवि होते हैं, पर उसे विस्तृत करनेवाले भव्यजन ही हुआ करते हैं। यह परम्परा है। जिस प्रकार बसन्त कोयल को बोलने के लिए बाध्य करता है, उसी प्रकार श्री गौतमस्वामी की भक्ति ही मुझे उनके पवित्र जीवन चरित्र को लिखने के लिए उत्साह प्रदान करती है। मैं यह समझता हूँ कि जैसे किसी ऊँचे पर्वत पर आरोहण की इच्छा करनेवाले लंगड़े की सब लोग हँसी उड़ाते हैं; वैसे ही कवियों की दृष्टि में मैं भी हँसी का पात्र बनूँगा; क्योंकि मेरी बुद्धि स्वल्प है।

कथा आरम्भ

मध्यलोक के बीच एक लाख योजन विस्तृत जम्बूद्वीप विद्यमान है। वह जम्बू-वृक्ष से सुशोभित और लवण सागर से घिरा हुआ है। उस द्वीप के मध्य में सुमेरु नाम का अत्यन्त रमणीय पर्वत है, जहाँ देवता लोग निवास करते हैं, उसी द्वीप में स्वर्ण-रौप्य की छह पर्वत मालाएँ हैं। इस मेरु पर्वत के पूर्व-पश्चिम की ओर बत्तीस विदेहक्षेत्र हैं, जहाँ से भव्यजीव मोक्ष प्राप्त किया करते हैं। पर्वत के उत्तर-दक्षिण की ओर भोगभूमियां हैं, जहाँ के लोग मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं। उन भोगभूमियों के उत्तर-दक्षिण भाग

में भरत और ऐरावत नाम के दो क्षेत्र हैं, जिनके बीच में रूपाभ विजयार्द्ध पर्वत खड़ा है एवं उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी छह काल जिनमें चक्कर लगाया करते हैं। उन क्षेत्रों में भरतक्षेत्र की चौड़ाई पाँच सौ छब्बीस योजन छह कला है। विजयार्द्ध पर्वत और गंगा, सिन्धु नाम के महानदियों के छह भाग हो गये हैं, जिन्हें छह देश कहते हैं। उन्हीं देशों में मगध नाम का एक महादेश है। वह समस्त भूमण्डल पर तिलक के समान सुशोभित है। वहाँ अनेक उत्सव सम्पन्न होते रहते हैं। वह धर्मात्मा सज्जनों का निवास स्थान है। इसके अतिरिक्त मटम्ब, कर्वट, गाँव, खेट, पत्तन, नगर, वाहन, द्रोण आदि सभी बातों से मगध सुशोभित है। वहाँ के वृक्ष ऊँचे, घनी छाया तथा फल से युक्त होते हैं। उन्हें देखकर कल्पवृक्ष का भान होता है। वहाँ के खेत धान्यादि उत्पन्न कर समग्र प्राणियों की रक्षा करते हैं। मनुष्यों को जीवन प्रदान करनेवाली औषधियाँ भी प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होती हैं। वहाँ के सरोवरों का तो कहना ही क्या, वे कवियों की मनोहर वाणी की भाँति सुशोभित हो रहे हैं। कवियों के वचन निर्मल और गम्भीर होते हैं, उसी प्रकार वे तालाब भी निर्मल और गम्भीर (गहरे) हैं। कवियों की वाणी में सरलता होती है अर्थात् नवरसों से युक्त होती है, उसी प्रकार वे सरोवर भी सरस अर्थात् जल से पूरे हैं। कवियों के वचन पद्यबद्ध होते हैं, वे सरोवर भी पद्मबन्ध कमलों से सुशोभित हो रहे हैं। वहाँ की पर्वतीय कन्दराओं में किन्नर जाति के देव लोग अपनी देवांगनाओं के साथ विहार करते हुए सदा गाया करते हैं। वहाँ के वन इतने रमणीय इतने सुन्दर होते हैं कि उन्हें देखकर स्वर्ग के देवता भी काम के वश में हो जाते हैं और वे अपनी देवांगनाओं के साथ क्रीड़ाएँ करने लग जाते हैं। मगध में स्थान-स्थान पर ग्वालों की स्त्रियाँ गायें चराती

हुई दिखलायी देती थीं। वे ऐसी सुन्दरी थीं कि उन्हें देखकर पथिक लोग अपना मार्ग भूल जाते थे। वहाँ की साधारण जनता धर्म-अर्थ-काम—इन तीनों पुरुषार्थों में रत रहती थीं। इसके साथ ही जिनधर्म के पालन में अपूर्व उत्साह दिखलाती थीं। शीलव्रत उनका श्रृंगार था। वहाँ जिनेन्द्रदेव के गर्भ कल्याणक के समय जो रत्नों की वर्षा होती थी, उसे धारणकर वह भूमि वस्तुत: रत्नगर्भा हो गयी थी।

उसी मगध में स्वर्गलोक के समान रमणीक राजगृह नाम का एक नगर है। वहाँ मनुष्य और देवता सभी निवास करते हैं। नगर के चारों ओर एक विस्तृत कोट बना हुआ था। वह कोट पक्षियों और विद्याधरों के मार्ग का अवरोधक था एवं शत्रुओं के लिये भय उत्पन्न करता था। उस कोट के निम्न भाग में निर्मल जल से भरी हुई खाई थी। उसमें खिले हुए कमल अपनी मनोरम सुगन्धि से भ्रमरों को एकत्रित कर लिया करते थे। नगर में चन्द्रमा के वर्ण जैसे श्वेत अनेक जिनालय सुशोभित हो रहे थे, जिनके शिखर की पताकायें आकाश को छूने का प्रयत्न कर रही थीं। वहाँ के मानववृन्द जल-चन्दन आदि आठों द्रव्यों से भगवान श्री जिनेन्द्रदेव के चरण कमलों की पूजा कर उनके दर्शनों से अत्यन्त प्रसन्न होते थे। राजगृह के धर्मात्मा पुरुष माँगनेवालों की इच्छा से भी अधिक धन प्रदान करते थे तथा इस प्रकार चिरकाल तक धन का अपूर्व संग्रह कर कुबेर को भी लज्जित करने में कुण्ठित नहीं होते थे। वहाँ के नवयुवक अपनी स्त्रियों को अपूर्व सुख पहुँचा रहे थे। इसलिए वहाँ की सुन्दरियों को देखकर देवांगनाएँ भी लज्जित हो रही थीं। वे अपने हावभाव, विलास आदि के द्वारा अपने पति को स्वर्गीय सुखों का उपभोग कराती थीं। नगर के महलों की पंक्तियाँ अत्यन्त ऊँची थी। उनमें सुन्दरता और सफेदी इतनी अधिक थी कि उनके समक्ष

चन्द्रमा को भी थोड़ी देर के लिए लज्जित होना पड़ता था। साथ ही बाजार की कतारें भी इतनी सुन्दरता के साथ निर्माण करायी गयी थीं कि जिन्हें देखकर मुग्ध हो जाना पड़ता था। उसकी दीवारें मणियों से सुशोभित थीं। वहाँ स्वर्ण, रौप्य, अन्न आदि का हर समय लेन-देन होता रहता था।

उस समय नगर का शासन भार महाराज श्रेणिक के हाथ में था। वे सम्यग्दर्शन धारण करनेवाले थे। समस्त सामन्तों के मुकुटों से उनके चरण-कमल सूर्य से देदीप्यमान हो रहे थे। उनके वैभवशाली राज्यों में प्रजा सुखी थी, धर्मात्मा थी। प्रजा धर्म साधन में सर्वदा तल्लीन रहती थी। अतएव उन्हें भय, मानसिक वेदना, शारीरिक सन्ताप, दरिद्रता आदि का कभी शिकार नहीं बनना पड़ता था।

महाराज श्रेणिक अत्यन्त रूपवान थे। वे अपनी सुन्दरता से कामदेव को भी लज्जित कर देते थे। उनका तेज इतना प्रबल था जो सूर्य को भी जीत लेता था तथा वे याचकों को इतना धन देते थे कि जिसे देखकर कुबेर को भी लज्जित होना पड़ता था। शायद विधि ने समुद्र से गम्भीरता छीनकर, चन्द्रमा से सुन्दरता लेकर, पर्वत से अचलता, इन्द्र गुरु बृहस्पति से बुद्धि छीनकर श्रेणिक का निर्माण किया था। महाराज श्रेणिक में तीनों प्रकार की शक्तियाँ थी। वे सन्धि-विग्रह आदि छह गुणों को धारण करनेवाले थे। वे अर्थ, धर्म, काम सबको सिद्ध करते हुए भी अपनी कर्मेन्द्रियों को वश में रखते थे। उनकी विमल कीर्ति चन्द्रमा के निर्मल प्रकाश की भाँति चारों ओर व्याप्त थी। यदि ऐसा न होता तो देवांगनाओं द्वारा उनके गुणों के गान की आशा नहीं की जा सकती थी। उनके शासन

का अभूतपूर्व प्रभाव चारों ओर फैल रहा था। महाराज के शत्रुगण ऐसे व्याकुल हो रहे थे, मानों उनका क्षणभर में ही विनाश होनेवाला है। उनकी प्रभा द्वितीया के चन्द्रमा की क्षीण कला की भाँति क्षीण हो गयी थी। महाराज श्रेणिक की प्रतिभा के सब लोग कायल थे। उनकी प्रखर बुद्धि स्वभाव से ही प्रतापयुक्त थी। अतएव वह चारों प्रकार की राजविद्याओं को प्रकाशित कर रही थीं। श्रेणिक की सहधर्मिणी का नाम चेलना था। वह कामदेव की पत्नी रति और इन्द्र की इन्द्राणी की भाँति कान्ति और गुणों से सुशोभित थी। उसके नेत्र मृग के से थे। उसका मुख चन्द्रमा जैसा कान्तिपूर्ण था। केश श्यामवर्ण के थे। कटि क्षीण, कुच कठिन और बड़े आकार के थे। उनकी सुन्दरता देखने लायक थी। विस्तीर्ण ललाट, भौहें टेढ़ी और नाक तोते की तरह थी। उसके वचन और गमन मदोन्मत्त हाथी की तरह थे। उसकी नाभि सुन्दर और उसके अंग-प्रत्यंग सभी सुन्दर थे। वह सदा सन्तुष्ट रहती थी। उसकी आत्मा पवित्र और बुद्धि तीक्ष्ण थी। शुद्ध वंश में उत्पन्न होने के कारण वह हावभाव विलास आदि सभी गुणों से सुशोभित थी। वह स्त्रियों में प्रधान और पतिव्रता थी। याचकों के लिए हित करनेवाला उत्तम दान देनेवाली थी। वह शील और व्रतों को धारण करनेवाली थी। उसका हृदय सम्यग्दर्शन से विभूषित था। वह सदा जिनधर्म के पालन में तत्पर रहा करती थी। अनेक देशों के अधिपति, विभिन्न प्रकार की सेनाओं से सुशोभित अत्यन्त समृद्धिशाली महाराज श्रेणिक, अपनी पत्नी चेलना के साथ भिन्न-भिन्न प्रकार के सुखों का उपभोग करते हुए जीवनयापन कर रहे थे।

वीर प्रभु के दरबार में महाराज श्रेणिक का प्रश्न

एक बार अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीरस्वामी समवसरण के साथ अनेक देशों में विहार करते हुए विपुलाचल के मस्तक पर आकर विराजमान हुए। भगवान तीन छत्रों से सुशोभित थे। वे अपने उपदेशामृत से भव्यजीवों के ताप हर लेते थे। उनके साथ गौतम गणधर आदि अनेक मुनियों का विस्तृत समुदाय था। साथ ही सुरेन्द्र नागेन्द्र खगेन्द्र आदि उनकी पाद-वन्दना कर रहे थे। भगवान के पुण्य के माहात्म्य से हिंसक जीव भी अपना-अपना वैरभाव छोड़कर परस्पर प्रेम करने लग गये थे। भगवान के आगमन से पर्वत की छटा निराली हो गयी। वृक्ष फल फूलों से सुशोभित हो गये। उन वृक्षों से एक प्रकार की मीठी सुगन्धि फैलने लगी। वे सब कल्पवृक्ष जैसे सुन्दर दिखने लगे।

भगवान महावीरस्वामी को देखकर माली चकित हो गया। उसने बड़ी भक्ति के साथ भगवान को नमस्कार किया। इसके पश्चात् वह सब ऋतुओं के फल पुष्प लेकर महाराज श्रेणिक के राजद्वार पर जा पहुँचा। वहाँ पहुँचकर माली ने द्वारपाल से निवेदन किया कि तू महाराज को सूचना दे आ कि उद्यान का माली आपकी सेवा में उपस्थित होना चाहता है। द्वारपाल ने जाकर महाराज से निवेदन किया कि आपके उद्यान का माली आप से मिलने की आज्ञा माँग रहा है। महाराज ने माली को लाने के लिए तत्काल आज्ञा दी। यथासमय माली महाराज के सन्मुख पहुँचा। महाराज सिंहासन पर बैठे हुए थे। माली ने हाथ जोड़े और फल-

पुष्प समर्पित कर सिर झुकाया। असमय में फल-फूलों को देखकर महाराज की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने तत्काल ही माली से पूछा—

ये पुष्प तुम्हें कहाँ प्राप्त हुए हैं ? उत्तर देते हुए माली ने बड़े विनम्र शब्दों में कहा—महाराज! विपुलाचल पर इन्द्रादि द्वारा पूज्य श्री महावीरस्वामी का आगमन हुआ है। उनके प्रभाव का ही यह फल है कि वृक्ष असमय में ही फल-फूलों से लद गये हैं।

अभी माली की बात समाप्त भी नहीं हो पायी थी कि महाराज सिंहासन से उठकर खड़े हो गये, और विपुलाचल पर्वत की दिशा की ओर सात पग चलकर भगवान महावीरस्वामी को उन्होंने परोक्ष प्रणाम किया। इसके बाद पुन: सिंहासन पर विराजमान हो गये। महाराज ने प्रसन्नता के साथ वस्त्राभूषणों से माली का सत्कार किया। यह ठीक ही है, ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो भगवान के पधारने पर सन्तुष्ट न हो।

महाराज ने श्री महावीरस्वामी के दर्शनार्थ चलने के लिए नगर में भेरी बजवा दी। नगर के सभी भव्य लोग चलने के लिए प्रस्तुत हुए। श्रेणिक अपनी प्रिया चेलना के साथ हाथी पर सवार हो प्रसन्नतापूर्वक भगवान के दर्शन के लिए चले। सब लोग महावीर-स्वामी के शुभ समवसरण में जा पहुँचे। महाराज श्रेणिक ने मोक्षरूपी अनन्त सुख प्रदान करनेवाली भगवान की स्तुति आरम्भ की—

हे भगवन्! आप परम पवित्र हैं, अतएव आपकी जय हो! आप संसार -सागर से पार करनेवाले हैं, अत: आपकी जय हो। आप सबके हितैषी हैं, अतएव आपकी जय हो। आप सुख के समुद्र हैं, अत: आपकी जय हो। हे परमेष्ठिन! आप समस्त संसारी

जीवों के परम मित्र हैं, आप संसाररूपी महासागर से पार उतारने के लिए जहाज के तुल्य हैं, अतएव मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवन! आपको बारम्बार नमस्कार है। आप गुणों के भण्डार हैं और संसार की माया से भयभीत हैं। आप कर्मरूपी शत्रुओं के संहारक हैं और विषयी विष को दूर करनेवाले हैं, अतएव आपको नमस्कार है। हे गुणों के आगार, हे भगवन! हे मुनियों में श्रेष्ठ जिनराज! आप कवियों की वाणी से भी परे हैं, आपके सद्गुणों का वर्णन करना सरस्वती की शक्ति के बाहर की बात है। इस प्रकार भगवान की स्तुति कर महाराज श्रेणिक गौतम गणधर आदि अन्यान्य मुनियों को नमस्कार कर मनुष्यों के कोठे में बैठ गये। थोड़ी देर बाद भगवान महावीरस्वामी ने भव्यजीवों को प्रबुद्ध करने के लिए मनोहर धर्मोपदेश देना आरम्भ किया—

'मुनि और श्रावकों के भेद सेधर्म में दो भेद हैं। मुनिधर्म मोक्ष का साधन होता है और श्रावक धर्म से स्वर्ग-सुख की प्राप्ति होती है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के भेद से मोक्षमार्ग तीन प्रकार का होता है। अर्थात् तीनों का समुदाय ही मोक्षमार्ग है। उनमें सम्यग्दर्शन उसे कहते हैं; जिसमें जीव-अजीव आदि सातों तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान किया जाता हो। वह भी दो प्रकार का होता है—एक निसर्गज-बिना उपदेशादि के, और दूसरा अधिगमज अर्थात् उपदेशादि द्वारा। इन दोनों के भी औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भेद से तीन भेद और कहे गये हैं। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व, इन सप्त प्रभृतियों के उपशम होने से औपशमिक सम्यग्दर्शन प्रकट होता है और सातों प्रकृतियों के क्षय होने से क्षायिक सम्यग्दर्शन प्रकट होता है और पूर्व की छह

प्रकृतियों के उदयाभावी क्षय होने तथा उन्हीं सत्तावस्थित प्रकृतियों के उपशम होने से एवं सम्यक् प्रकृति मिथ्यात्व के उदय होने से क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन होता है। पदार्थों के सत्य ज्ञान को सम्यक्ज्ञान कहते हैं। वह सम्यक्ज्ञान मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान के भेद से पाँच प्रकार का होता है। जैन शास्त्रों के सिद्धान्त के अनुसार पापरूप क्रियाओं के त्याग को सम्यक्चारित्र कहते हैं। वह पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति भेद से तेरह प्रकार का होता है। अठारह दोषों से रहित सर्वज्ञदेव में श्रद्धान करना, अहिंसारूप धर्म में श्रद्धान करना एवं परिग्रह रहित गुरु में श्रद्धान करना, सम्यग्दर्शन कहलाता है। संवेग, निर्वेद, निन्दा, गर्हा, शम, भक्ति, वात्सल्य और कृपा ये आठ सम्यग्दर्शन के गुण हैं। भूख, प्यास, बुढ़ापा, द्वेष, निद्रा, भय, क्रोध, राग, आश्चर्य, मद, विषाद, पसीना, जन्म, मरण, खेद, मोह, चिन्ता, रति ये अठारह दोष हैं। सर्वज्ञदेव इन दोंषों से सर्वथा रहित होते हैं। आठ मद, तीन मूढ़ता, छह अनायतन और शंका, कांक्षा आदि आठ दोष मिलकर सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोष हैं। द्यूत, माँस, मद्य, वेश्या, परस्त्री, चोरी और शिकार ये सप्त व्यसन हैं। बुद्धिमानों को इनका भी त्याग कर देना चाहिए। मद्य, माँस, मधु के त्याग और पाँच उदुम्बरों के त्याग ये आठ मूलगुण हैं। प्रत्येक गृहस्थ के लिए इन मूलगुणों का पालन करना बहुत ही आवश्यक है। मद्य का त्याग करनेवाले को छाछ मिले हुए दूध, वासी दही आदि का भी त्याग कर देना चाहिए। इसी प्रकार माँस का त्याग करनेवाले के लिए चमड़े में रखा हुआ घी, तेल, पुष्प, शाक, मक्खन, कन्दमूल और घुना हुआ अन्न कदापि नहीं खाना चाहिए। धर्मात्मा लोगों के लिए बैगन, सूरन, हींग, अदरक और बिना छना हुआ जल भी त्याज्य है। अज्ञात

फलों को तो सर्वथा त्याग कर देना ही चाहिए। ऐसे ही बुद्धिमान लोगों को चाहिए कि वे मधु का परित्याग कर दें। कारण कि शहद निकालते समय अनेक जीवों का घात होता है। उसमें मक्खियों का रुधिर और मैल मिला हुआ होता है। इसलिए वह लोक में निन्दनीय है। इसके अतिरिक्त श्रावकों को दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित्तत्याग, रात्रिभुक्तित्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमति त्याग और उदिष्ट त्याग—इन ग्यारह प्रतिज्ञाओं का पालन करना चाहिए। अहिंसा अणुव्रत, सत्य अणुव्रत, अचौर्य अणुव्रत, ब्रह्मचर्य अणुव्रत, परिग्रह परिमाण अणुव्रत ये पाँच प्रकार के अणुव्रत कहलाते हैं। श्रावकों को उचित है कि इनका भी पालन करें।

दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डविरतिव्रत ये तीन गुणव्रत हैं। श्रावकाचार को जाननेवाले श्रावक इनका उत्तम रीति से पालन करें। छह प्रकार के जीवों पर कृपा करना, पंचेन्द्रियों को वश में करना एवं रौद्रध्यान तथा आर्तध्यान के त्याग कर देने को सामायिक कहते हैं। सामायिक का पालन नियमित रूप से श्रावकों के लिये अनिवार्य होता है। अष्टमी, चौदश के दिन प्रोषधोपवास अत्यन्त आवश्यक है। प्रोषधोपवास के भी तीन भेद माने गये हैं—उत्तम मध्यम और जघन्य। केसर, चन्दन आदि पदार्थों के लेपन को भोग कहते हैं और वस्त्राभूषणादि को उपभोग। इन दोनों की संख्या का नियत कर लेनी चाहिए। इसको भोगोपभोगपरिमाणव्रत कहते हैं। श्रावकों के लिए यह भी आवश्यक है। शास्त्रदान, औषधिदान, अभयदान और आहारदान ये चार प्रकार के दान हैं। प्रत्येक गृहस्थ को चाहिए कि वे अपनी शक्ति के अनुसार इन दानों को गृही त्यागी

मुनियों को दे। बाह्य और आभ्यन्तर के भेद से शुद्ध तपश्चरण दो प्रकार के होते हैं। इन्हें तत्त्वज्ञानियों को अपने कर्म नष्ट करने के लिए उपभोग में लाना चाहिए।'

इस प्रकार के धर्मोपदेश को सुनकर महाराज श्रेणिक को प्रसन्नता हुई। सत्य ही है—अमृत के घड़े की प्राप्ति से कौन सन्तुष्ट नहीं होता। अर्थात् सभी सन्तुष्ट होते हैं। पश्चात् महाराज श्रेणिक गणधरों के प्रभु स्वामी सर्वज्ञदेव भगवान को नमस्कार कर खड़े हो गये और भगवान गौतम गणधर के पूर्व वृत्तान्त पूछने लगे—भगवन! ये गौतम स्वामी कौन हैं? किस पर्याय से यहाँ आकर इन्होंने जन्म धारण किया है। इन्हें किस कर्म से ये लब्धियाँ प्राप्त हुई हैं। ये सब क्रमानुसार मुझे बतलाइये। आपके निर्मल वचनों से मेरा सारा सन्देह दूर हो जाएगा। आपके वचनरूपी सूर्य के समक्ष मेरे सन्देहरूपी अन्धकार का नाश हो जाना निश्चित है।

धर्म के प्रभाव से उच्चकुल की प्राप्ति और मिष्ट वचनों की प्राप्ति होती है। उस पर सबका प्रेम होता है। वह सौभाग्यशाली होता है और उत्तम पद को प्राप्त होता है। उसे सर्वांग सुन्दर स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं और स्वर्ग की प्राप्ति होती है। उसे उत्तम बुद्धि, यश, लक्ष्मी और मोक्ष तक प्राप्त होते हैं। अत: श्रेणिक ने जैनधर्म में निष्ठा कर अपनी सद्बुद्धि का परिचय दिया।

द्वितीय अधिकार

भगवान जिनेन्द्रदेव ने अपने शुभ वचनों द्वारा संसार के दूषित मल का प्रक्षालन करते हुए कहा—श्रेणिक! तू निश्चिन्ततापूर्वक श्रवण कर। मैं पाप और पुण्य दोनों से प्रकट होनेवाले श्री गौतम गणधरस्वामी के पूर्व भवों का वर्णन करता हूँ।

भरतक्षेत्र में अनेक देशों से सुशोभित, अत्यन्त रमणीय अवन्ती नाम का एक देश है। उस देश में मुनिराजों द्वारा एकत्रित किये हुए यश के समूह की तरह विशाल तथा ऊँचे श्वेतवर्ण के जिनालय शोभित थे। वहाँ पथिकों को इच्छित फूल, फल प्रदान करनेवाली वृक्ष पंक्तियाँ सुशोभित हो रही थीं। वहाँ समय पर मेघों द्वारा सींचे हुए खेत, सब प्रकार की सम्पत्ति, फल-फूल से लदे हुए थे।

उस देश में पुष्पपुर नाम का एक नगर था। वह नगर ऊँचे कोट से घिरा हुआ, सुन्दर उद्यानों से सुशोभित, नन्दन वन को भी लज्जित कर रहा था। वहाँ के देव-मन्दिर जिनालय और ऊँचे-ऊँचे राजमहल अपनी शुभ्र छटा से हँसते हुए जान पड़ते थे। वहाँ के अधिवासी जैनधर्म के अनुयायी थे। वे धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पुरुषार्थों को सिद्ध करनेवाले थे। वे दानी और बड़े यशस्वी थे। वहाँ की ललनाएँ सुन्दर, शीलवती, पुत्रवती, चतुर और सौभाग्यवती थीं। इसलिए वे कल्पलताओं की तरह सुशोभित होती थीं। नगर का राजा महीचन्द्र था, जो दूसरा चन्द्रमा ही था। उसकी सुन्दरता अपूर्व थी। अनेक राजा तथा जन समुदाय बड़ी भक्ति के साथ उसकी सेवा करते थे। इतना सब कुछ होते हुए भी उसके हृदय में अरहन्तदेव के प्रति बड़ी भक्ति थी। वह धन का भोग करनेवाला, दाता, शुभ कामों को सम्पन्न करनेवाला, नीतिज्ञ और गुणी था। अत: वह

महाराज भरत के समान जान पड़ता था। दुष्टों के लिए वह काल के समान और सज्जनों का प्रतिपालक था। राजा महीचन्द्र राजविद्या और युद्धविद्या दोनों में निपुण था। राजा की सुन्दरी नाम की रानी थी। वह अत्यन्त गुणवती, रूपवती, पतिव्रता और अनेक गुणों से सुशोभित थी। वह राजा सुन्दरी के साथ राज्य सामग्री का उपभोग करते हुए पंच परमेष्ठियों को नमस्कार आदि करते हुए सुखपूर्वक समय व्यतीत कर रहा था।

उस नगर के बाहर एक दिन अंगभूषण नाम के मुनिराज का आगमन हुआ। वे आम के पेड़ के नीचे एक शिला पर आसन लगा कर बैठ गये। उनके साथ चारों प्रकार का संघ था। वे अवधिज्ञानधारी, सम्यग्दर्शन से विभूषित थे। कामरूपी शत्रुओं को मर्दन करनेवाले थे और सम्यक्चारित्र के आचरण करने में सदा तत्पर थे। तपश्चरण से उनका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया था। क्रोध कषाय, मानरूपी महापर्वत को चूर करने के लिये वे वज्र के समान तीक्ष्ण थे। मोहरूपी हाथी के लिये सिंह के समान तथा इन्द्रियरूपी मल्लों को परास्त करनेवाले थे। इसके अतिरिक्त परीषहों को जीतनेवाले सर्वोत्तम और छह आवश्यकों से सुशोभित थे। वे मूलगुणों और उत्तरगुणों को धारण करनेवाले थे। राजा महीचन्द्र को जब यह बात मालूम हुई कि नगर के बाहर मुनिराज का आगमन हुआ है, तब वह अपनी रानी और नगर निवासियों को लेकर उनके दर्शन के लिए चला। वहाँ पहुँचने पर राजा ने जल, चन्दन आदि आठ द्रव्यों से मुनिराज के चरण कमलों की पूजा की। इसके बाद बड़ी नम्रता के साथ उनकी स्तुति कर नमस्कार किया। पुन: उनसे धर्मवृद्धि का आशीर्वाद प्राप्त कर उनके समीप ही बैठ गया। उस वन में लोगों का बड़ा समुदाय देख अत्यन्त कुरूपा तीन शूद्र की कन्यायें—जो कहीं जा

रही थीं, आकर बैठ गयीं। इसके बाद मुनिराज ने राजा महीचन्द्र और जन समुदाय के लिए भगवान जिनेन्द्र की वाणी से प्रकट हुआ लोक कल्याणकारक धर्मोपदेश देना आरम्भ किया।

मुनिराजश्री कहने लगे—देव, शास्त्र और गुरु की सेवा करने से धर्म की उत्पत्ति होती हैं। एकेन्द्रिय और द्वय इन्द्रिय आदि समस्त प्राणियों की रक्षा करने से धर्म उत्पन्न होता है। जीवों के उपकार से धर्म उत्पन्न होता है और धर्म के मार्गों को प्रदर्शित करने से सर्वोत्तम धर्म प्रकट होता है। मन, वचन, काय की शुद्धता द्वारा सम्यग्दर्शन के पालन करने, व्रतों के धारण करने तथा मद्य, माँस, मधु के त्याग करने से धर्म की अभिवृद्धि होती है। पाँचों इन्द्रियों को वश में करने तथा अपनी शक्ति के अनुसार दान करने से धर्म की अभिवृद्धि होती है। ऐसे अन्य भी बहुत से उपाय हैं, जिनसे जैनधर्म की वृद्धि होती है और लोक तथा परलोक में सांसारिक जीवों को उत्तम सुख प्राप्त होता है। फल यह होता है कि धर्म के प्रभाव से मानव जाति को शुद्ध रत्नत्रय की प्राप्ति होती है। रत्नत्रय के प्राप्त होने के बाद मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है।

यह धर्मरूपी कल्पवृक्ष इच्छा के अनुसार फल देनेवाला, हर्ष उत्पन्न करनेवाला एवं सौभाग्यशाली बनानेवाला है। इससे कान्ति, यश सभी प्राप्त होते हैं। अपने पुण्य के प्रभाव से भरतक्षेत्र के छह खण्डों की भूमि, नवनिधि, चौदह रत्न और अनेक राजाओं से सुशोभित चक्रवर्ती की विभूति प्राप्त होती है। उसी पुण्य की महिमा से मनुष्य देवांगनाओं के समान रूपवती और अनेक गुणों से सुशोभित ऐसी अनेक स्त्रियों का उपभोग करते हैं। यही नहीं; विद्वान, वीर और सौभाग्यशाली पुत्र भी पुण्य के प्रभाव से ही प्राप्त होते हैं। बड़े-बड़े राजा महाराजा तथा धनवान लोग—जो सोने के

पात्र में भोजन करते हैं, वह भी पुण्य के प्रभाव के बिना नहीं प्राप्त होता। राजन! शरीर का स्वस्थ रहना, उत्तम कुल में जन्म ग्रहण करना, दीर्घ आयु को प्राप्त करना तथा सुन्दररूप का मिलना, ये सब पुण्य के प्रभाव हैं। इसे धर्म का ही फल समझना चाहिए। यह भी स्मरण रहे कि देव, शास्त्र और गुरु की निन्दा से पाप उत्पन्न होता है तथा सम्यग्दर्शन व्रत आदि नियमों को भंग करने से महान पाप का भागी बनना पड़ता है। सातों व्यसनों के सेवन से भी भारी पाप लगता है। क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों के संयोग से, अन्य जीवों को पीड़ा पहुँचाने से और निन्द्य आचरणों के व्यवहार से पाप उत्पन्न होता है। परस्त्री सेवन से, दूसरे के धन अपहरण से, किसी की धरोहर ले लेने से कठिन पाप होता है, अर्थात् महापाप लगता है। जीवों की हिंसा करने, झूठ बोलने, अधिक परिग्रह की इच्छा रखने और किसी के कर्म में विघ्न उपस्थित करने से भी पाप का भागी होना पड़ता है। मद्य, माँस, मधु भक्षण और हरे कन्दमूल आदि पदार्थों के भक्षण से भी पाप लगता है। बिना छाने हुए जल से भी बड़ा पाप लगता है। कुत्ता, बिल्ली आदि दुष्ट जीवों के पालन-पाषण से भी पाप का भागी बनना पड़ता है। इस प्रकार के पापकर्म के उदय से ये जीव कुरूप, लंगड़े, काने, टौंटे, बौने, अन्धे, कम आयुवाले, अंगोपांग रहित तथा मूर्ख उत्पन्न होते हैं। पापकर्म के उदय से ही दरिद्री नीचे अनेक शारीरिक व्याधियों से पीड़ित और दु:खी उत्पन्न होते हैं। जीवों के अपयश बढ़ानेवाले लम्पट, दुराचारी तथा नित्य कलह करनेवाले पुत्र का उत्पन्न होना भी पाप का ही कारण है। अक्सर पापकर्म से ही स्त्रियाँ काली, कलूटी तथा दुर्वचन कहनेवाली मिलती हैं। साथ ही पापकर्म से ही लोगों को भीख माँगने के लिए विवश होना पड़ता है। यहाँ तक

कि उन्हें स्वादहीन मिट्टी के बर्तन में रखा हुआ भोजन करना पड़ता है। अतएव राजन! इस संसार की जितनी दु:ख प्रदान करने वाली वस्तुएँ हैं, वे सब की सब पाप कर्मों के उदय से ही प्राप्त होती हैं। संसार में जो कुछ भी बुरा है, उसे पाप का ही फल समझना चाहिए।

मुनिराज ने इस प्रकार पुण्य और पाप के फल कह सुनाये, जिसे सुनकर राजा महीचन्द्र को अपूर्व सन्तोष हुआ। इधर राजा ने तीनों कुरूपा कन्याओं को देखा। वे दीन स्वभाव की, दु:खी और माता-पिता, भाई आदि से रहित थीं। उन्हें देखकर राजा का हृदय दयापूर्ण हो गया। उनके नेत्र खिल उठे तथा मन प्रसन्न हो गया। इस प्रकार का परिवर्तन देखकर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे सद्भाव के साथ उन्हें देखने लगे। इसके पश्चात् उन्होंने मुनिराज की स्तुति कर पूछा—

भगवन! इन कुरूपा कन्याओं को देख मेरे हृदय में प्रेम के भाव क्यों अंकुरित हो रहे हैं।

उत्तर में मुनिराज कहने लगे—राजन! इस स्थल पर प्रेम उत्पन्न होने का कारण पूर्वभव का सम्बन्ध है। मैं बतलाता हूँ। ध्यान देकर श्रवण करो।

❀❀❀

भरतक्षेत्र में ही काशी नाम का एक सुविस्तृत देश है। वह तीर्थंकरों के पंच-कल्याणकों से सुशोभित है। वहाँ के नगर, ग्राम और पत्तन की शोभा अपूर्व है। वह रत्नों की खान के नाम से प्रसिद्ध है। उसी देश में बनारस नाम का एक अत्यन्त मनोहर नगर है। वह इतना सुन्दर है कि मानो विधि ने अलका नगरी को जीतने के लिए ही उसका निर्माण किया हो। आकाश को स्पर्श करनेवाले उसके

चारों ओर सुविशाल कोट हैं। कोट की ऊँचाई इतनी ऊँची है, जिससे प्रतीत होता है कि क्रोध करने पर वह सूर्य के तेज और बादलों के समूह को भी रोक सकती है। कोट के चारों ओर खाई थी, जिसे देखकर शत्रुओं के छक्के छूट जाते थे। वह खाई निर्मल और गम्भीर जल से परिपूर्ण थी। इसलिए वह एक सुपटु कवि की कविता के समान सुशोभित थी। वहाँ के जिनालय अपनी फहराती हुई शुभ्र ध्वजा से भव्य जीवों को पवित्र करने के उद्देश्य से बुला रहे थे। वहाँ के मकानों की पंक्तियाँ ऊँची और भव्य थीं। उन पर तरह-तरह के चित्र बने हुए थे। वे बर्फ और चन्द्रमा की तरह शुभ्र थीं। इसीलिए दर्शनीय थीं। उन्हें देखकर यही प्रतीत होता था कि मुक्ता की सुन्दर मूर्तियाँ प्रस्तुत की गयी हों। वहाँ के मनुष्य स्वभाव से ही दान करनेवाले थे। वे भगवान जिनेन्द्रदेव की सेवा में संलग्न रहनेवाले थे। परोपकार, धर्मकार्य में उनके आचरण अनुकरणीय थे। वहाँ की स्त्रियों का तो कहना ही क्या? वे देवांगनाओं को भी रूप में परास्त करती थीं। वे सौभाग्यवती गुणवती पतिप्रेम में सदा तत्पर रहतनेवाली थीं। वहाँ के बाजार भी अपनी अपूर्व विशेषता रखते थे। दुकानों की पंक्तियाँ भी इतनी सुन्दरता के साथ निर्मित की गयी थीं कि उन्हें देखते रहने की इच्छा होती थी। वह नगर सोने, चाँदी, रत्न और अन्नादि से सर्वथा भरपूर था। सन्ध्या के बाद से वहाँ की स्त्रियाँ ऐसे मधुर स्वर में गाने लगती थीं कि आकाश मार्ग से जाते हुए चन्द्रमा को भी उनके लालित्य पर मुग्ध होकर कुछ देर के लिए रुक जाना पड़ता था। इस प्रकार वे चन्द्रमा को भी रोक लेने में समर्थ थीं। रात्रिकाल में अपने इच्छित स्थान को गमन करनेवाली वेश्याएँ भी चंचल नदी की भाँति लहराती हुई देख पड़ती थीं। बावड़ियों से जल भरनेवाली पनिहारियाँ भी क्रीड़ा करती हुई

नजर आती थीं। कमलों की सुगन्धी से भ्रमण करते हुए भौरें उन्हें दु:खी कर रहे थे। उनकी जलक्रीड़ा से उनके शरीर से जो केसर धुलकर निकल रही थी, उससे भौरों के शरीर पीले पड़ रहे थे और उन्हीं सरोवर में कामी पुरुष अपनी रमणियों के साथ जलक्रीड़ा कर रहे थे। नगर की दूसरी ओर खलिहानों में अनाज की राशियाँ शोभित हो रही थीं। वे राशियाँ किसानों को आनन्द देनेवाली थीं। वहाँ के खेतों की विशेषता थी कि वे हर प्रकार के पदार्थ उत्पन्न करते रहते थे। सड़क के दोनों किनारों पर सघन पेड़ों की सुन्दर पंक्तियाँ लगी हुई थीं, जिनकी सुशीतल छाया में शान्त पथिक लोग विश्राम किया करते थे। उन वृक्षों की डालियाँ फलों के भार से नत हो रही थीं। नगर के चारों ओर सुन्दर और विशाल उद्यान थे, जहाँ की लताएँ पुष्प और फलों से सुशोभित थीं। वे लताएँ मनोहर सरस एवं विलासिनी स्त्रियों के समान शोभित थीं।

उस नगर की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वहाँ कोई रोगी नहीं था। यदि सरोग था तो राजहंस ही। वहाँ ताड़न का तो नाम नहीं था। हाँ, कपास का ताड़न होता था और उससे रुई निकाली जाती थी। वहाँ किसी के पतन की भी सम्भावना नहीं थी। यदि पतन था तो वृक्षों के पत्तों का; क्योंकि वही ऊपर से नीचे गिरते थे। बन्धन भी केशपाशों का ही होता था। वे ही बड़ी सतर्कता से बाँधे जाते थे। वहाँ दण्ड, ध्वजाओं में ही था और किसी को दण्ड नहीं दिया जाता था। भंग भी कवियों के रचे हुए छन्दों तक ही सीमित था और किसी का भंग नहीं होता था। हरण स्त्रियों के हृदय में ही था और किसी का हरण नहीं किया जाता था। स्त्रियाँ ही पुरुषों के हृदय का हरण कर लेती थीं। वहाँ भय भी नवोढ़ा स्त्रियों को ही होता और कोई कभी भयभीत नहीं होता था।

इस नगर के राजा का नाम विश्वलोचन था। वह शत्रु समुदाय के लिए सिंह के समान था और उसकी कान्ति सूर्य को भी परास्त करनेवाली थी। वह याचकों को इच्छा के अनुसार दान दिया करता था। अतएव वह मन की उत्कट भावनाओं को पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्षों को भी सदा जीतता रहता था। सम्भवत: विधाता ने इन्द्र से प्रभुत्व लेकर, कुबेर से धन और चन्द्रमा से शीतलता और सुन्दरता लेकर उसका निर्माण किया था। उसके अंग-प्रत्यंग ऐसे बने थे, मानों सांचे में ढाले गये हों। जिस प्रकार हिरण, सिंह के भय से जंगल का परित्याग कर देता है; उसी प्रकार विश्वजीत के महाप्रताप को देखकर उसके शत्रु अपनी प्राण-रक्षा के लिए देश का त्याग कर देते थे। उसका विस्तृत ललाट ऐसा मनोरम प्रतीत होता था, मानो विधि ने अपने लिखने के लिए ही उसे बनाया हो। उसके भुजारूपी दण्ड सुन्दर और जांघ तक लम्बे थे। वे ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे शत्रुओं को बाँधने के लिए नागपाश हों। उसका सुविस्तृत वक्षस्थल देवांगनाओं को भी मोहित कर लेता था और लक्ष्मी का क्रीड़ास्थल जान पड़ता था। समुद्रों को धारण करनेवाली गम्भीर पृथ्वी की तरह उसको विमल बुद्धि चारों प्रकार की विद्याओं को धारण करनेवाली थी। उसकी अत्यन्त उज्ज्वल और निर्मल कीर्ति सुदूर देशों तक फैली हुई थी।

विश्वजीत राजा के यहाँ प्रधान मन्त्री, सुन्दर देश, किले, खजाने और सेनाएँ आदि सब कुछ थे। प्रभाव उत्साह आदि तीनों शक्तियाँ विद्यमान थीं। इसके अतिरिक्त सन्धि विग्रह, यान आसनद्वेधा आश्रय आदि छह गुण थे, इसीलिए वह राजा शत्रुओं के लिए अजेय हो रहा था। वह विश्व के सभी राजाओं में श्रेष्ठ गिना जाता था। नीति निपुण रूपवान मिष्टभाषी और प्रजाहितैषी

था। उसके सिंहासनारोहण के बाद से ही राज्य की सारी प्रजा सुखी, धर्मात्मा और दानी हो गयी थी।

राजा की विशालाक्षी नाम की पत्नी थी, जो अत्यन्त रूपवती और प्रेम की प्रतिमूर्ति थी। वह इन्द्राणी, रति, नागस्त्री और देवांगनाओं जैसी रूपवती जान पड़ती थी। रानी की गति मदोन्मत्त हाथियों की तरह थी। इसकी अंगुलियों के बीसों नख द्वितीया के चन्द्रमा के समान बड़े ही मनोहर और भव्य जान पड़ते थे। उसकी जाँघ केले के स्तम्भ की तरह सुकोमल और कामोद्दीपक थी। वह रानी अपने मनोरम कटिप्रदेश की सुन्दरता से सिंह के कटि प्रदेश की शोभा को हरण कर लेती थी। यदि ऐसा न होता तो सिंह को गुफाओं की शरण नहीं लेनी पड़ती। उसकी नाभि गोल, मनोहर एवं गम्भीर थी। वह काम रस (जल) से भरी हुई नायिका की भाँति प्रतीत होती थी। उसके कुच विल्बफल के समान कठोर थे। वह कामीजनों के हृदय को जीतनेवाली थी। उन कुचों के मध्य रोमाराशि ऐसी प्रतीत होती थी मानों दोनों के विरोध को दूर करने के लिए सीमा निर्धारित कर रही हों। रानी के हाथों की दोनों हथेलियाँ लाल, कोमल और सुन्दर थीं। उन पर मछली, ध्वजा आदि के आकर्षक चिह्न बने हुए थे। वह अपनी मुखाकृति से आकाश के चन्द्रमा को भी लज्जित करती थी। इसीलिए चन्द्रमा महादेव की सेवा करने में लग गया था। रानी की नाक इतनी सुन्दर थी कि तोते की चोंचों की सारी सुन्दरता जाती रही। तोते बेचारे लज्जा से अवनत हो वन में जा पहुँचे थे। वह अपनी सुमधुर वाणी से पिक की वाणी भी जीत चुकी थी। सम्भवत यही कारण है कि कोयलों ने श्यामवर्ण धारण कर लिया है। उसके विशाल नेत्र हिरणी के नेत्रों को भी मात करते थे। यही कारण है कि हिरणियों ने अपना बसेरा वन में कर

लिया है। रानी के दोनों कान मनोहर और कर्ण–भूषणों से शोभित हो रहे थे। उसकी भौहें कमान जैसी टेढ़ी और चंचल थीं, मानों वे कामरूपी योद्धाओं को परास्त करने के लिए धनुषबाण ही हों। रानी की सुगन्धित पुष्पों से गठी हुई केशराशि ऐसी सुन्दर जान पड़ती थी कि उसकी सुगन्धि के लोभ से सर्प ही आ गये हों। वह अपने कटाक्ष और हावभाव से सुशोभित थी। अर्थात् समस्त गुणों से भरपूर थी। उसके गुणों का वर्णन करने में कोई भी समर्थ नहीं हैं। वह बड़ी रूपवती और पति को स्ववश में करने के लिए औषधि के तुल्य थी। ऐसी परम सुन्दरी के साथ सुख उपभोग करता हुआ राजा जीवनयापन कर रहा था। जिस प्रकार कामदेव रति के वश में रहता है, ठीक उसी प्रकार उस रानी ने अपने पति को प्रेमपाश में बाँध लिया था। राजा विश्वलोचन को उस विशालाक्षी के स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और शब्द से जो ऐहिक सुख उपलब्ध थे, उसे वही अनुभव कर सकता है, जिसे ऐसी सुन्दरी पत्नी मिलने का सौभाग्य प्राप्त हो।

कुछ समय व्यतीत होने पर ऋतुराज बसन्त का आगमन हुआ। स्वभाव से ही बसन्त ऋतु में तरुणों में कामोपभोग की लालसा प्रबल हो उठती है। समस्त वृक्ष फल–फूलों से लद गये। उन पर पक्षियों का निवास हो गया। उस समय तरुण पुरुष भी अपनी कान्ता के साथ परस्पर सम्भोग के लिए उत्सुक हो गये। प्रेम पूर्ण कामिनियाँ उनके हृदयों में निवास करने लग गयीं। बसन्त की उन्मत्तता शील, संयमादि धारण करनेवाले मुनियों को भी विचलित करने से नहीं चूकती। कामरूपी योद्धा बसन्त, क्षीण शरीरवाले मुनियों तक के हृदयों में भी क्षोभ उत्पन्न कर रहा था। उसी समय राजा विश्वलोचन अपनी विशाल सेना और नगर निवासियों को

साथ लेकर क्रीड़ा के लिए उस वनस्थली में पहुँचा, जहाँ के वृक्ष लताओं से भरपूर हो रहे थे। वन में पहुँचकर राजा को हार्दिक प्रसन्नता हुई। वन की मनोहर सुन्दरता, वायु से चंचल लताओं के समूह एवं चहकते हुए पक्षियों की समधुर ध्वनि से ऐसा प्रतीत होता था, मानो राजा विश्वलोचन के समक्ष वायुरूपी अप्सरा नृत्य कर रही हो। वह लतारूपी अप्सरा पुष्पों से सजी हुई थी। वृक्षों की पत्तियाँ उसके रमणीय केश से प्रतीत होती थी। फल स्तन थे। हंसादि पक्षियों की सुमधुर ध्वनि संगीत का भान करा रहे थे। वह वनस्थली सारी छटा को धारण किये हुए थी। मानव चित को चुरानेवाली लताएँ पुष्पहार जैसी सुशोभित थीं। बसन्त के उन्मत्त भ्रमरों की झंकार उसके गीत थे, कोयलों की वाणी मृदंग और शुक की ध्वनि वाणी छिद्रयुत बासों की आवाज सम और ताल का काम दे रही थीं। इस प्रकार सारी वनस्थली लहलहा उठी थी, मानों अपने अतिथि महाराज का स्वागत कर रही हो।

प्रथम ही राजा ने आम के वृक्ष पर बैठे हुए दो स्त्री-पुरुष पिकों को देखा। वे परस्पर प्रेम-चुम्बन कर रहे थे। जिस स्त्री का सम्भोग सुख प्रदान करनेवाला पति विदेश चला गया हो, वह भला बसन्त के इस मधुमय समय में पिक की वाणी कैसे सहन कर सकती है। राजा वन के चारों ओर घूम-घूमकर पक्षियों के मनोहर कलरव सुनने लगे। कहीं मालती के सुगन्धित पुष्प देखे, कहीं पुष्प वृक्षों पर भ्रमरों का समूह क्रीड़ा करते हुए दिखायी दिया। इसी प्रकार किन्हीं स्थानों पर मत्त मयूर नृत्य करते थे। स्थान-स्थान पर बन्दरों की विलास-क्रीड़ा, हिरणों की लीला और पक्षियों के समुदाय देखे। राजा ने आम के वृक्ष, अनार के वन और कहीं बिजौरे के फल देखे। स्त्री-पुरुषों की क्रीड़ा भी देखने लायक थी। कहीं कोई

अपनी प्रिया को मना रहा है। कहीं स्त्री मान द्वारा पति को चिढ़ा रही है। कोई प्रेम में मत्त थी और कोई स्तन दिखाकर प्रेम प्रकट कर रही थी। किन्हीं स्थलों पर हरी घास थी, कहीं पृथ्वी जल से भर रही थी और कहीं पर धान के वृक्ष फलों से झुक रहे थे। इन सारी शोभा को राजा ने बड़े चाव से देखा। पश्चात् वह अंगूर की लताओं के मण्डप में पहुँचे और वहीं पंचेन्द्रियों की तृप्ति करनेवाले सरस कामोपभोग एवं लीलापूर्वक ऐहिक स्पर्श से रानी को प्रसन्न करने लगे। इस प्रकार राजा कामोपभोग से प्रसन्न होकर रानी के साथ जल क्रीड़ा के लिये गये। जल क्रीड़ा करते समय सरोवर की छटा देखने लायक थी। शरीर की केसर धूल धुलकर सरोवर के जल को पीला करने लगी और पुष्पों की सुगन्ध से वह सरोवर सुगन्धित हो गया। जब उनकी जल क्रीड़ा समाप्त हो गयी तो वे बड़े गाजे–बाजे और स्त्रियों के मनोहर गीत के साथ अपने राजमहल को लौटे।

सन्ध्या हो चली। जिन कामी जनों के हृदय को रमणियों ने अपना लिया था, मानों उन पर दया करके ही सूर्य अस्त होने लगा। समस्त आकाश में लाली दौड़ गयी। चारों ओर से पक्षियों के कोलाहल सुनाई देने लगे। आकाश में पूर्ण चन्द्रमा का उदय हुआ। कुमुदिनी प्रफुल्लित हुई और सम्भोग करनेवाली स्त्रियाँ अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं। राजा भी महल में आकर पुनः अपनी रानी के साथ आसक्त हो गये। सत्य ही है, स्त्रियाँ स्वभाव से ही मोहक होती हैं। साथ ही यदि रूपवती हों तो फिर पूछना ही क्या? ऐसे ही सुख से समय व्यतीत करते हुए कितने दिन व्यतीत हो गये, राजा को तनिक भी खबर नहीं थी। वस्तुतः सुख का एक मास भी

एक दिवस की तरह बीत जाता है और दु:ख का एक दिवस भी मास की तरह प्रतीत होता है।

एक दिन की बात है। रानी प्रसन्नचित्त होकर चामरी और रंगिका नाम की दो दासियों के साथ अपने महल के झरोखे पर खड़ी हुई बाहरी दृश्य देख रही थी। एक नाटक देखकर उसके हृदय में चंचलता उत्पन्न हो गयी। वह नाटक आनन्दवर्द्धक, मनोहर और रसपूर्ण था। उसमें अनेक पात्र अपना अभिनय सम्पन्न कर रहे थे। भेरी, मृदंग ताल, बीणा, वंशी, डमरू, झांझ आदि अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे। वहाँ पुरुषों की भीड़ लगी हुई थी। वह नाटक ताल और लयों से सुन्दर था। उसमें स्त्री वेशधारी पुरुषों के नृत्य हो रहे थे। खेल तथा दृश्य के साथ पुरुषों के अंग विक्षेप और स्त्रियों के गान हो रहे थे। अर्थात् वह नाटक सबके मन को प्रफुल्लित कर रहा था। ऐसे मनोमुग्धकारी अभिनय को देखकर रानी चंचल हो उठी। ठीक ही है, अपूर्व नाटक को देखकर कौन ऐसा हृदय होगा, जिसमें विकार न उत्पन्न होता हो।

रानी सोचने लगी—इस राज्योपभोग से मुझे क्या लाभ होता है ? मैं एक अपराधी की भाँति बन्दीखाने में पड़ी हुई हूँ। वे स्त्रियाँ ही संसार में सुखी हैं, जो स्वतन्त्रतापूर्वक जहाँ कहीं भी विचरण कर सकती है। अवश्य यह पूर्वभव के पाप कर्मों के उदय का ही फल है कि मुझे उस अपूर्व सुख से वंचित होना पड़ा है। अतएव अब से मैं भी उन्हीं की तरह स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करने का प्रयत्न करूँगी और वह भी सदा के लिये। इस सम्बन्ध में लज्जा करना ठीक नहीं।

रानी की चिन्ता उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। किन्तु अपने मनोरथों

को पूर्ण करने के लिये उसे कोई मार्ग नहीं सूझ पड़ा। पर एक उपाय उसे सूझ पड़ा। उसने अपनी चतुर दासियों से कहा, दासियों! स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करना मानव जन्म को सार्थक करता है एवं कामजन्य भोगादि को प्राप्त करानेवाला होता है। अतएव आओ, हम लोग स्वतन्त्रतापूर्वक घूमने-फिरने के उद्देश्य से बाहर निकल चलें।

दासियों ने रानी के प्रस्ताव का समर्थन किया। उन्होंने कहा —आपके विचार बहुत ही उत्तम हैं। वस्तुत: मानवजन्म सार्थक करने के लिये इससे बढ़कर और दूसरा मार्ग नहीं है। इसके पश्चात् काम-बाण से दग्ध, अत्यन्त विह्वल, विलास की कामना करनेवाली, अपने कुलाचार से रहित वह रानी पूर्वार्जित पापों के उदय से दासियों को लेकर घर से बाहर निकलने का प्रयत्न करने लगी। वस्तुत: असत्य भाषण करना, दुर्बुद्धि होना, कुटिल होना और कपटाचार करना, ये स्त्रियों के स्वाभाविक दोष होते हैं। इन्हीं कारणों से उसने रुई भरकर एक स्त्री का पुतला बनाया और उसे वस्त्राभूषणों से खूब सजाया। रानी ने उस पुतले की कमर में करधनी, पैरों में नूपुर, सिर में तिलक लगाये तथा उसे चन्दन से लिप्त कर फूलों से खूब सजाया। उसके स्तनों पर कंचुकी, मुख पर पत्तन तथा मोतियों की नथ पहना दी। रानी एक बार उस बने हुए पुतले को देखकर बड़ी प्रसन्न हुई। वह ठीक रानी की आकृति का ही बन गया था। पश्चात् रानी ने उस पुतले को चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों से लिप्त और मोती आदि अनेक रत्नों से सुशोभितकर पलंग पर सुला दिया। उसने द्वारपाल आदि सब सेवकों को धन देकर अपने वश में कर लिया था। उसके पूर्वभव के पापों के उदय से ही उसकी ऐसी

विचित्र बुद्धि हो गयी। वह किसी देवी की पूजा के बहाने अपनी दो दासियों को साथ लेकर घर से बाहर निकली। उन तीनों ने अपने वस्त्राभूषण आदि राज्य चिह्नों का सर्वथा परित्याग कर दिया एवं गेरुआ वस्त्र पहनकर योगिनी वेश में हो गयीं। वे राजमहल से चलकर सीधे वन में पहुँची। उनका राजभवन में मिलनेवाला सुन्दर भोजन तो छूट ही गया था, वे अपनी भूख की ज्वाला मिटाने के लिए वृक्षों के फल खाने लगीं। यहाँ विचारणीय है कि कहाँ तो रानी का पद और कहाँ आज योगिनी का वेष। केवल पापकर्मों के उदय से ही मनुष्य को अशुभ कर्मों की प्राप्ति होती है।

दूसरे दिन काम से पीड़ित राजा मणियों से सजाये हुए रानी के सुन्दर महल में जाने लगा। उसने अन्यान्य परिजन वर्ग को महल के बाहर ही छोड़ दिया और स्वयं सुगन्धित पदार्थों से विलेपित महल के अन्दर जा पहुँचा। उस दिन रानी के उस सुन्दर पलंग को देख राजा को अपूर्व प्रसन्नता हुई। उसके रोम-रोम पुलकित हो उठे और नेत्र तथा मुँह प्रफुल्लित हो रहे थे। उसने मन ही मन विचार किया कि मैं इन्द्र हूँ और मेरी रानी साक्षात् शची है अर्थात् इन्द्राणी है। आज यह राजभवन इन्द्रभवन सा शोभायमान हो रहा है। यह सुन्दर पलंग शची की शय्या है। इस प्रकार राजा का कोमल कामीहृदय आनन्द सागर में गोते लगाने लगा। फिर भी उसने विचार किया कि आज रानी मेरा सत्कार क्यों नहीं करती है। इसका कारण राजा की समझ में नहीं आ रहा था। उसने सोचा— सम्भवत: उसे कोई रोग अथवा मानसिक कष्ट तो नहीं हो गया है, अथवा मुझसे नाराज तो नहीं है। ऐसी ही विकट चिन्ता से व्याकुल होकर राजा कहने लगा—

रानी! आज न उठने का कारण शीघ्रता से बतला। इतना कहकर

वह पलंग पर बैठ गया और अपन कोमल करों से उसने रानी का स्पर्श किया। किन्तु उस कृत्रिम अचेतन विशालाक्षी के कुछ भी उत्तर न देने पर राजा समझ गया कि यह कृत्रिम रानी है, वस्तुत: महल में रानी नहीं है। रति के समान सुन्दरी विशालाक्षी का किसी अपर पापी ने हरण कर लिया। राजा की आतुरता और बढ़ गयी। वह मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। तत्काल ही सेवकों ने शीतोपचार किया, जिससे राजा की मूर्छा दूर हुई। राजा का हृदय प्रिय रानी के वियोग में व्याकुल हो रहा था। वह बच्चों की तरह विलाप करने लगा। वह कहने लगा—हंस जैसी चाल चलनेवाली, मृगनैनी! तू शीघ्रतापूर्वक बतला कहाँ है ? हे गुणों का गौरव बढ़ानेवाली, मेरे हृदयरूपी धन को अपहरण करनेवाली, हे विलासिनी! तू कहाँ चली गयी ?

हे चन्द्र-बदनी सुन्दरी! तेरी सेवा करनेवाली दासियाँ कहाँ गयीं ? साथ ही मेरे प्रति तेरा प्रेम कहाँ चला गया ? संसार के माया मोह मुझे सुन्दर नहीं जान पड़ते। मेरी समझ में नहीं आता कि जब इस महल में कोई नहीं आ सकता तो किस प्रकार तू अपहरित की गयी अथवा तू अपने आप ही कहीं चली गयी। क्या तू उस प्रकार से तो नष्ट नहीं हुई, जिस प्रकार बुरी संगति में पड़कर सज्जन पुरुष भी नष्ट हो जाते हैं। स्त्रियाँ अन्य पुरुष को अपने यहाँ बुलाती हैं और किसी अन्य से प्रेम करती हैं एवं नियत समय किसी अन्य को बतलाकर अन्य के साथ क्रीड़ा करती हैं। ये सब काम एक साथ ही सम्पन्न होते हैं। जैसा उनका बाहरी स्वरूप होता है, वैसा भीतरी नहीं होता। इसलिए स्त्रियों के चरित्र का भला कौन वर्णन कर सकता है। शोक से सन्तप्त राजा का हृदय व्याकुल होकर विचार करने

लगा। किसी अभिप्राय, वक्रदृष्टि, बुरी संगति तथा एकांत की बातचीत से स्त्रियाँ नष्ट हो जाती हैं। राजा ने सोचा—मैंने तो किसी समय भी रानी को अप्रसन्न नहीं किया। उसे पटरानी के पद पर बैठाया तथा समस्त रनवास में वह पूज्य समझी जाती थी। फिर उसके नष्ट होने का कोई कारण नहीं दिखता। जिस स्त्री के सद्गुणी और प्रजापालन में तत्पर १० वर्ष का पुत्र हो, वह सुन्दरी उसे त्यागकर कैसे चली गयी, यह समझ में नहीं आता। अवश्य ही वह अपनी नीच दासियों की संगति में पड़कर भ्रष्ट हुई है। जब खेत का मेड़ ही उस खेत को खाने लगे, तब भला उस खेत की रक्षा ही कैसे की जा सकती है ? यह निश्चित है कि कुसंगति में पड़कर सज्जन भी नष्ट हुए बिना नहीं रह सकते। इस भाँति अनेक मानसिक चिन्ताओं से दु:खी होकर राजा ने राज्य-कार्य का सारा प्रबन्ध त्याग दिया। उसे राज्य-शासन से एक प्रकार की विरक्ति सी हो गयी। राजा की इस चिन्ता से अन्य सामन्त राजा और प्रजा भी दु:खी थी। अनेक राजाओं ने समझाया भी, पर क्षणभर के लिए भी राजा का शोक कम नहीं हुआ। बात यह थी कि रानी उसके मन को हर ले गयी थी। राजा का वियोग दु:ख इतना बढ़ गया कि अन्त में उसने उसका प्राण लेकर ही छोड़ा। यह ठीक ही है, क्योंकि कौन ऐसा पुरुष है, जिसे स्त्री के वियोग में मरना नहीं पड़ता हो।

राजा की मृत्यु हो जाने के पश्चात् उस ऐश्वर्यशाली राज्य शासन का भार उसके पुत्र को सौंपा गया। समस्त मन्त्रियों और सामन्त राजाओं ने मिलकर राज्य-तिलक की विधि सम्पन्न करायी।

उस राजा के मृत जीव को अनेक बार संसार का चक्कर काटना

पड़ा। इसी जन्म-मृत्यु के चक्कर में वह एकबार विशाल हाथी हुआ। वह हाथी अत्यन्त तेजस्वी और बड़ा ही मदोन्मत्त था। उसकी विकराल आँखें लाल रंग की थीं। वह इतना उद्दण्ड था कि वन में स्त्री-पुरुषों की हत्या कर डालता था। उस हाथी ने इस भव में महापाप का उपार्जन किया। करण यह कि प्राणियों का घात करना जन्म-जन्म में दु:खदायी हुआ करता है। किन्तु उस हाथी के पुण्य-कर्म के उदय से उस वन में किसी मुनिराज का आगमन हो गया। वे मुनि महाराज अवधिज्ञानी और सत्पुरुषों के लिए उत्तम धर्मोपदेशक थे। उनके द्वारा हाथी को धर्मोपदेश मिला। उसने बड़ी प्रसन्नता से श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिए। इसके बाद उस हाथी ने फल-फूलादि किसी भी सचित्त पदार्थों का ग्रहण नहीं किया। अन्त में उसने चारों प्रकार के आहार त्याग कर समाधिमरण धारण कर लिया। मृत्यु के समय उसने भगवान अरहन्तदेव का ध्यान किया; जिससे वह मरकर प्रथम स्वर्ग में देव हुआ।

हे राजन! वहाँ से चयकर तुम्हें राजा का उत्तम शरीर प्राप्त हुआ है। आगे तुझे भी मुक्ति की प्राप्ति होगी। अब उन तीनों स्त्रियों की कथा कहता हूँ। ध्यान देकर सुन—

❀❀❀

वे तीनों बड़ी प्रसन्नता से स्वतन्त्रतापूर्वक वन में विचरण करने लगीं। इस प्रकार भ्रमण करते हुए वे अवन्ती देश में जा पहुँची। उनके साथ कंथा, खडाम, दण्ड और अन्य बहुत सी योगिनियाँ थी। उन्हें भिक्षा माँग-माँगकर अपना पेट पालना पड़ता था। यह भी सत्य ही है कि 'वुभुक्षित: कि न करोति पापम्' भूखे मनुष्य कौन सा पाप नहीं कर डालते अर्थात् भूख की ज्वाला शान्त करने

के लिए सब कुछ करना पड़ता है। वे सदा प्रमाद करनेवाली वस्तुओं का सेवन करती थीं। मद्य, माँस आदि उनके दैनिक आहार थे। इसके अतिरिक्त वे मधु एवं अनेक जीवों से भरे हुए उदुम्बरों तक का भक्षण करती थीं। उनकी कामवासना इतनी प्रबल हो उठी थी कि ऊँच-नीचे का कुछ भी विचार न कर जो जहाँ मिलता, उसी के साथ सम्भोग कर लेती थीं। यही नहीं, वे सबके सामने ही ऐसी रागिनियाँ गाया करती थीं, जिससे योगियों को भी काम उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता था। वे यह भी कहा करती थीं कि हमें योग धारण किये सौ वर्ष से भी अधिक हो गये हैं।

सौभाग्यवश नगर में एक दिन धर्माचार्य नाम के मुनि का आगमन हुआ। वे केवल आहार के लिए आये थे। मुनिमहाराज मौन धारण किये हुए, पर्वत के समान अचल और इन्द्रियों को दमन करनेवाले थे। उन्होंने अपने मन को वश में कर लिया था और शरीर से भी ममत्व का नाश हो गया था। कठिन तपश्चर्या से उनके शरीर की क्षीणता बढ़ चली थी। वे शील संयम को धारण करने और चारित्र-पालन में अत्यन्त तत्पर रहा करते थे। उन्होंने समस्त कषायों का सर्वनाश कर दिया था। वे अपने धर्मोपदेश द्वारा अमृत की वारि बहाया करते थे। वे क्षमा के अवतार और संसारी जीवों पर दया की दृष्टि रखनेवाले थे। मुनिराज कठिन दोपहरी में भी योग धारण किया करते थे। वे चोर और लम्पटों के पापरूपी वृक्ष को काट डालने के लिए कुठार के समान तीक्ष्ण थे। उन्होंने समस्त परिग्रहों का सर्वथा परित्याग कर दिया था। उस समय वे ईर्या पथ की बुद्धि से गमन कर रहे थे। उन्हें देखकर वे तीनों स्त्रियाँ क्रोध से लाल हो गयीं। उन्होंने मुनि को सम्बोधित करते हुए कहा—

अरे! नंगे फिरनेवाले! तू मानमोहादि शुभकर्मों से सर्वथा रहित है। न जाने हमारे किस पाप कर्म के उदय होने से तेरा साक्षात् हुआ। इस समय हम उज्जैनी के महाराजा के यहाँ धन माँगने के उद्देश्य से जा रही थीं। वह राजा अत्यन्त धर्मात्मा और शत्रुओं को परास्त करनेवाला है। तूने अपना नग्नरूप दिखलाकर अपशकुन कर दिया। तू सर्वथा बुरा है और जो तेरा दर्शन व स्तुति करता है, वह भी बुरा है अर्थात् पापी है। इसलिए हमारे कार्यों की सिद्धि होना सम्भव नहीं। इस समय तो अभी दिन बाकी हे और सभी वस्तुएँ अच्छी तरह से दिखलाई पड़ती हैं किन्तु रात्रि होने पर हम लोग मार्ग में अपशकुन करने का फल तुझे चखावेंगी।

उन स्त्रियों के कठोर वचनों से मुनिराज को जरा भी क्रोध नहीं हुआ, कारण वे दयालु स्वभाव के थे। मुनिराज ने इस घटना पर दृष्टिपात न कर वन में जाकर योग धारण कर लिया। वस्तुत: जल में अग्नि का वश नहीं चल सकता, ठीक उसी प्रकार योगियों के पवित्र हृदय को क्रोधरूपी अग्नि नहीं जला सकती।

रात्रि होने पर वे तीनों नीच स्त्रियाँ मुनि के समीप पहुँची और क्रोधित हो भाँति-भाँति के उपद्रव करने लगीं। एक ने रोना प्रारम्भ किया और दूसरी उनसे लिपट गयी। इसके अतिरिक्त तीसरी धुआं करके मुनिराज को अनेक कष्ट देने लगी। सत्य है काम से पीड़ित व्यक्ति जितना अनर्थ करे, वह थोड़ा है।

किन्तु इतने उपद्रव के होते हुए भी मुनि का स्थिर मन चलायमान नहीं हुआ। क्या प्रलय वायु के चलने पर महान मेरुपर्वत कभी चलायमान होता है? इसके बाद वे दुष्ट स्त्रियाँ नंगी होकर मुनि के समक्ष नृत्य करने लगीं। वे काम से संतप्त स्त्रियाँ मुनि से कहने

लगीं—स्वतन्त्र विचरण करनेवालों के लिए परलोक में भी स्वतन्त्रता प्राप्त होती है और इहलोक में भोग में लिप्त रहने से भोगों की सदैव प्राप्ति होती रहती है। किन्तु नग्न रहने से उसे नंगापन ही उपलब्ध होता है। अतएव तुम्हें चाहिए कि, हमारी इच्छाओं की पूर्ति करो। इस भोग की लालसा चक्रवर्ती, देवेन्द्र और नागेन्द्रों तक ने की है। संसार का सारा सुख स्त्रियों की प्राप्ति में होता है। कारण वे इन्द्रियजन्य सुख प्रदान करनेवाली होती हैं। इसलिए जो व्यक्ति स्त्री-सुख से वंचित है, उसका जन्म व्यर्थ है। सत्य मानों, यदि तूने हमारी इच्छा की पूर्ति नहीं की तो तेरा यह शरीर चण्डी के समक्ष रख दिया जाएगा। इस प्रकार कुवाक्य कहती हुई उन स्त्रियों ने विकाररहित मुनिवर के शरीर को उठाकर चण्डी के समक्ष रख दिया। इसके पश्चात् उन सबों ने मुनिराज पर घोर उपसर्ग किये। पत्थर, लकड़ी, मुक्का, लात, जूते आदि से उनकी ताड़ना की और अन्त में बाँध दिया। उस समय मुनिराज ने बारह अनुप्रेक्षाओं का चिन्तवन किया। अनुप्रेक्षा ही प्राणी को भवसागर से पार उतारनेवाली है।

वे विचार करने लगे कि मानव शरीर क्षणभंगुर है, यह जीवन जल का बुदबुदा है और लक्ष्मी विद्युत की भाँति चंचल है। जब भरत आदि चक्रवर्ती तक का जीवन नष्ट हो गया तो इस जीवन की क्या गिनती है? बिना अरहंत देव की शरण गहे इस जीव का निस्तार नहीं। इसलिए हे जीव! तू सदा अरहन्तदेव का स्मरण किया कर। तुम्हारी यात्रा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव ये पाँचों संसार में हो चुके हैं और अब भी तू त्रस-स्थावर योनियों में भ्रमण कर रहा है। पर तुम्हारी यह असावधानी ठीक नहीं है। अब तुझे रत्नत्रय की प्राप्ति में अपना चित्त लगाना चाहिए; क्योंकि संसार का विनाश

उसी रत्नत्रय की प्राप्ति से ही होता है। आत्मन! तू अकेला ही कर्मों का कर्ता और सुख-दु:ख का भोक्ता है। तेरे सब भाई-बन्धु तुझसे भिन्न हैं। तुझे अकेला जन्म ग्रहण करना पड़ता है और मरना पड़ता है। अतएव कर्म-कलंक से रहित सिद्ध परमेष्ठी के चरणों का निरन्तर ध्यान कर। इस जीव की कर्म-क्रियाओं और इन्द्रियजन्य विषयों में भी विभिन्नता है, फिर कुटुम्बी और भाईबन्धु तो सर्वथा अलग हैं ही।

आत्मन् तू लौकिक वस्तुओं से सर्वथा भिन्न है। संसार के सभी लौकिक ऐश्वर्य जड़वत हैं, किन्तु तू ज्ञान दर्शन और कर्मरहित शुद्ध जीव है। इसलिए आत्मा का ध्यान करना चाहिए। यह देह रक्त, माँस, रुधिर, हड्डी, विष्ठा, मूत्र, चर्म, वीर्य आदि महा अप-पदार्थों से निर्मित है, किन्तु भगवान पंच परमेष्ठी इन दोषों से सर्वथा अलग हैं। अत: तू उन्हीं की आराधना कर। जैसे नाव में छिद्र हो जाने पर उसमें पानी भर जाता है, ठीक वैसे ही मिथ्यात्व, अविरत, कषाय और योगों से जीवों के कर्मों का आस्रव होता रहता है और नाव की तरह यह भी संसार-सागर में डूब जाता है। अतएव कर्मों के आस्रव से सर्वथा मुक्त सिद्ध परमेष्ठी का स्मरण किया कर। मिथ्यात्व, अविरत, आदि का त्याग कर देने से एवं ध्यान, चारित्र आदि धारण कर लेने से आनेवाले समस्त कर्म रुक जाते हैं। उसे संवर कहा जाता है। उसी संवर के होने पर जीव मोक्ष का अधिकारी होता है। अत: हे जीव! तुझे अपने शरीर का मोह त्यागकर शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा का स्मरण करना चाहिए। इस शरीर पर मोहित होना व्यर्थ है। तप और ध्यान से जिन पूर्व-कर्मों का विनाश करना है, उसे निर्जरा कहते हैं। वह दो

प्रकार की होती हैं—एक भाव निर्जरा और दूसरी द्रव्य निर्जरा। ये दोनों निर्जरायें सविपाक और अविपाक के भेद से दो प्रकार की होती हैं। अतएव मोक्ष प्राप्ति के लिए जीव को सदा कर्मों की निर्जरा करते रहना चाहिए। यह लोक अकृत्रिम है। इसका निर्माण कर्ता कोई नहीं है। यह चौदश रज्जू ऊँचा और तीन सौ तैतालिस रज्जू घनाकार है। अत: इस लोक में जीव का भ्रमण करते रहना सर्वथा व्यर्थ है। कारण इस संसार में भव्य होना महान कठिन होता है, फिर मनुष्य, आर्य क्षेत्र में जन्म, योग्य काल में उत्पत्ति, योग्य कुल, अच्छी आयु आदि की प्राप्ति सर्वथा दुर्लभ है और इनकी प्राप्ति होने पर भी रत्नत्रय की प्राप्ति और भी कठिन है। इसलिए हे जीव! तू इच्छा पूरक चिन्तामणि के समान सुख प्रदान करनेवाले रत्नत्रय को पाकर क्यों समय को नष्ट कर रहा है? अपना कल्याण साधन कर। अहिंसारूप यह धर्म एक प्रकार का है। मुनि-श्रावक भेद से दो प्रकार, क्षमा, मार्दव आदि से दश प्रकार, पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति भेद से तेरह प्रकार एवं और व्रतों के भेद से अनेक प्रकार का है। धर्म की कृपा से ही आत्मा के परिणाम पवित्र होते हैं और उसी पवित्रता से आत्मा प्रबुद्ध होता है एवं प्रबुद्ध होने पर वह रत्नत्रय में स्थिर होने में समर्थ होता है।

स्त्रियों द्वारा सताये हुए वे मुनिराज इस प्रकार की बारह अनुप्रेक्षाओं पर विचार करने लगे। उन्हें स्त्रियों के उपद्रव का कुछ भी ज्ञान नहीं था। प्रात:काल होते ही वे स्त्रियाँ आने-जानेवाले लोगों के डर से भाग गयीं। किन्तु कर्मों को विनष्ट करनेवाले वे मुनिराज उसी प्रकार निश्चल रहे। उनके आत्मध्यान में किसी प्रकार का विक्षेप नहीं हुआ। इसके बाद वहाँ अनेक श्रावक

एकत्रित हो गये। उन्होंने मन-वचन-काय से शुद्धतापूर्वक चन्दनादि अष्ट द्रव्यों से मुनिराज की पूजा की। उनका शरीर तो क्षीण था ही, उस पर रात के उपद्रव से उनके सर्वांग में घाव हो रहे थे। उन्होंने मौन धारण कर लिया था। इन सब कारणों को देखकर उन सत्पुरुषों ने रात्रि का काण्ड समझ लिया। स्त्रियों के कटाक्ष भी सत्पुरुषों को चलायमान नहीं कर सकते। क्या प्रलय की वायु मेरु को उड़ा सकती है ? सम्भव नहीं ! यद्यपि इस संसार में शेर को मारनेवाले और हाथियों को बाँधनेवाले बहुत मिलेंगे, पर ऐसे बहुत कम मिलेंगे जिनका चित्त स्त्रियों में न रमा हो।

उन दुष्ट स्त्रियों ने मुनिराज पर घोर उपसर्ग किये थे, इसलिए उन्हें महापाप का बन्ध हुआ। वे पापकर्म के उदय से कुष्ट रोग से ग्रसित हुईं। उन तीनों की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी। वे सदा पापकर्म में रत रहती थीं और लोग सदा उनकी निन्दा किया करते थे। वे तीनों महादु:खी रहती थीं। आयु की समाप्ति होने पर रौद्रध्यान से उनकी मृत्यु हुई। इन सब पापकर्मों के उदय से वे पाँचवें नरक में गयीं। उन्हें पाँचों प्रकार के दु:ख सहन करने पड़े। उनकी कृष्ण लेश्या थी। उन्हें बन्धन, छेदन, कदर्थन, पीड़न, तापन, ताड़न आदि के दु:ख सहन करने पड़ते थे। उष्ण वायु तथा सर्द वायु सदा उनको उत्पीड़ित किया करती थीं। उन नारकियों का अवधिज्ञान दो कोस तक का था, शरीर की ऊँचाई एक सौ पच्चीस हाथ और आयु सत्रह सागर की थी। वे सबकी सब नपुंसक थी। उनका शरीर भयानक और वे स्वभाव से भी भयानक थे। उनमें धर्म का तो नाम ही नहीं था। वे सबसे ईर्ष्या करते और सदा मार-मार की रट लगाया करती थी। आयु की समाप्ति पर वे नारकी स्त्रियाँ वहाँ से बाहर हुईं और परस्पर विरोधी शरीरों में उत्पन्न हुईं। सभी ने

एक साथ ही कर्मों का बन्ध किया था, अतः वे बिल्ली, सूकरी, कुतिया और मुर्गी की योनियों में आयीं। वे हर प्रकार का कष्ट सहती और जीवों की हिंसा किया करती थीं। परस्पर लड़ना और उच्छिष्ट भोजन के द्वारा उनका जीवन निर्वाह होता था। इसके अतिरिक्त जहाँ भी जाती, वहाँ से दुत्कार दी जाती थीं।

सत्य है रौद्रध्यान से जीव नरक में जाते हैं; आर्तध्यान से तिर्यंच गति होती है और धर्मध्यान के द्वारा मनुष्य की गति एवं देवगति होती है तथा शुक्लध्यान से केवलज्ञान के द्वारा उत्कृष्ट मोक्ष प्राप्त होता है।

जो लोग शान्ति प्रिय मुनिराज पर क्रोध करते हैं, उन्हें अवश्य नरक मिलता है। और जो उन पर उपसर्ग करते हैं, उनकी तो बात ही क्या। अतएव विद्वान लोगों को चाहिए कि, शास्त्र एवं निर्ग्रंथ गुरु की स्वप्न में भी निन्दा न करें। कारण इनकी निन्दा करनेवालों को नरक की प्राप्ति होती है और स्तुति करनेवालों को स्वर्ग की। अतः हे राजन्! वे तीनों पशु जीवधारी स्त्रियाँ अत्यन्त कष्ट से मरीं। ठीक ही है, पापकर्मों के उदय से जीव को प्रत्येक भव में दुःख झेलने पड़ते हैं। मृत्यु के पश्चात् उनका जन्म प्रधान धर्म स्थान अवन्ती देश के समीप अत्यन्त नीचे लोगों से बसे हुए एक कुटुम्बी के घर कन्याओं के रूप में हुआ। उस कुटुम्बी के लोग मुर्गियाँ पाला करते थे। इन कन्याओं के गर्भ में आते ही उनके धन-जन का नाश हो गया। घर के सब लोग मर गये। केवल एक पिता बचा था। उन कन्याओं में एक कानी, दूसरी लंगड़ी और तीसरी अत्यन्त कुरूपा काले रंग की थी। मुनि के घोर उपसर्ग के पाप से उनका जीव अशान्त था। देह सूखी हुई, उनकी आँखें पीले

रंग की, नाक टेढ़ी और पेट बढ़ा हुआ था। दाँतों की पंक्तियाँ दूर-दूर, पैर मोटे और शरीर भी आवश्यकता से अधिक मोटा था। उनके स्तन विषम, हाथ छोटे और होठ लम्बे थे। उनके बाल पीले रंग के, आवाज काक जैसी और उनका हृदय प्रेम से शून्य था। उनकी भौहें मिली हुई थीं और वे सदा असत्य भाषण करती थीं। क्रोध से उनका शरीर जलता रहता था। वे विचारहीन और अनेक रोगों से पीड़ित थीं। वे नगर के जिस कोने से जाती, वहाँ दुर्गन्ध फैल जाती थी। सत्य ही है, पापकर्मों के उदय से संसार में क्या नहीं होता। उच्छिष्ट भोजनों से उनका जीवन निर्वाह होता था, चिथड़ों से शरीर ढकती थीं और दु:ख से सदा पीड़ित रहती थीं।

क्रम से वे तीनों कुरूप कन्याएँ जवान हुईं। उनके पूर्व कर्मों के उदय से उन्हीं दिनों देश में दुर्भिक्ष पड़ा। वे तीनों पेट की ज्वाला से अशान्त होकर व्यभिचार कराने के उद्देश्य से विदेश को चलीं। मार्ग में भी उनकी लड़ाई जारी थी। उनके साथ न तो खाने का सामान था और न उनमें लज्जा-हया थी। यह पाप कर्म का ही प्रभाव है। जब वह फल देने लगता है तो धन-धान्य, रूप, बुद्धि सबके सब नष्ट हो जाते हैं। वे कन्यायें अनेक नगरों में भ्रमण करती हुई घटनावशात इस पुष्पपुर में आ गयी हैं। इस वन में अनेक मुनियों को देखकर धन की इच्छा से यहाँ उपस्थित हुई हैं, फिर भी बड़ी प्रसन्नता के साथ इन सभी ने मुनियों को नमस्कार किया है।

राजन! यह संसार अनादि और अनन्त है। जीव का कर्म है, जन्म और मृत्यु प्राप्त करना। इसमें भ्रमण करते हुए कर्मों के उदय से उच्च और निकृष्ट भव प्राप्त होते रहते हैं। कुछ दु:ख भोगते हैं

और कुछ सुख। यहाँ तक कि पुण्योदय से स्वर्ग और मोक्ष शुद्धभाव से तक के सुख उपलब्ध होते रहते हैं। वे तीनों कुरूपा कन्यायें अपने पूर्वभव की, बातें सुनकर बड़ी प्रसन्न हुईं, जिस प्रकार बादलों की गर्जना सुनकर मोर प्रसन्न होते हैं।

मुनिराज ने पुन: कहना आरम्भ किया—राजन! यह श्रेष्ठ धर्म कल्पवृक्ष के तुल्य है। सम्यग्दर्शन इसकी मोटी जड़ और भगवान जिनेन्द्रदेव इसकी मोटी रीढ़ हैं। श्रेष्ठ दान इस धर्म की शाखायें हैं, अहिंसादि व्रत पत्ते और क्षमादिक गुण इसके कोमल और नवीन पत्ते हैं। इन्द्रादि और चक्रवर्ती की विभूतियाँ इसके पुष्प हैं। यह वृक्ष श्रद्धारूपी बादलों की बारिश से सिंचित किया जाता है और मुनि समुदाय रूपी पक्षीगण इसकी सेवा में संलग्न रहते हैं। अतएव यह धर्मरूपी कल्पवृक्ष तुम्हें मोक्ष सुख प्रदान करें।

❀

तीसरा अधिकार

वे तीनों कन्यायें संसार से भयभीत हो उठीं। उन सभी ने बड़ी श्रद्धा और आदरभाव से मुनिराज को नमस्कार किया और उनसे प्रार्थना करने लगीं:—

मुनिराज! मुनि के उपसर्ग से ही हमें मातृ-पितृ विहीन होना पड़ा है और हमने भव-भव में अनेक कष्ट भोगे हैं। स्वामिन! आप भवसंसार में डूबते हुए को पार उतारने के लिए जहाज के तुल्य हैं। हे संसारी जीवों के परम सहायक! पूर्वभव में हमने जो पाप किये हैं, उनके नाश होने का मार्ग बताइये। जिस व्रतरूपी औषधि से यह पापरूपी विष नष्ट होता है, उसे आज ही बताइये।

उनकी करुण वाणी सुनकर मुनिराज का कोमल हृदय दयार्द्र हो गया। वे कहने लगे—पुत्रियों! तुम्हें लब्धिविधान व्रत धारण करना चाहिए। यह व्रत कर्मरूपी शत्रुओं का विनाशक और संसार सागर से पार उतारनेवाला है। इसके पालन करने से समस्त भवों में उत्पन्न हुए पाप क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं। इसके द्वारा इन्द्र, चक्रवर्ती की विभूतियाँ तो क्या, मोक्ष तक के अपूर्व सुख प्राप्त होते हैं।

मुनिराज की बातें सुनकर वे कन्यायें कहने लगीं—मुनिराज! इस व्रत के पालन के लिए कौन-कौन से नियम हैं और प्रारम्भ में किसने इस व्रत का पालन किया, जिसे सुनिश्चित फल की प्राप्ति हुई।

प्रत्युत्तर में मुनिराज ने कहा—पुत्रियों! इस व्रत का नियम सुनो। सुनने मात्र से ही मनुष्य को उत्तम सुख प्राप्त होता है। मोक्ष सुख प्राप्त करनेवाले भव्यलोगों को यह व्रत भाद्रपद और चैत्र के

महीनों में शुक्लपक्ष के अन्तिम दिनों में करना चाहिए। उस दिन शुद्ध जल से स्नान कर धुले हुए शुद्ध वस्त्र पहनना चाहिए और मुनिराज के समीप जाकर तीन दिन के लिए शीलव्रत (ब्रह्मचर्य) धारण करना चाहिए। इसके अतिरिक्त मन-वचन-काय की शुद्धतापूर्वक अष्टोपवास करना चाहिए। क्योंकि प्रोषधपूर्वक उपवास ही मोक्षफल को देनेवाला है। इससे समस्त कर्म नष्ट हो जाते हैं। यदि इस प्रकार उपवास करने की शक्ति न हो तो एकान्तर अर्थात् एक दिन बीच का छोड़कर उपवास करना चाहिए। इस व्रत को जैन विद्वानों ने बड़ी महत्ता देकर स्वर्ग फल देनेवाला बतलाया है। यदि ऐसी भी शक्ति न हो तो शक्ति अनुसार ही करे। इन तीनों दिन जैनमन्दिर में ही शयन करे। साथ ही वर्द्धमान स्वामी की प्रतिमा की मन, वचन और काय को स्थिरकर चन्दनादि अष्ट द्रव्यों से पूजा करे। पुन: सर्वज्ञदेव के मुँह से उत्पन्न सरस्वती देवी की पूजा तथा मुनिराज के चरणों की सेवा करे। कारण गुरु-पूजा ही पापरूपी वृक्षों को काटने के लिए कुठारस्वरूप है। वह संसार समुद्र में पड़े हुए जीवों को पार कर देने के लिए नौका के तुल्य है। उस समय मन को एकाग्र कर भक्ति के साथ तीनों समय सामायिक करना चाहिए। ये सामायिक आनेवाले कर्मों को रोकने में समर्थ होते हैं। जैनशास्त्रों में श्री वर्द्धमानस्वामी के पाँच नाम बतलाये गये हैं— महावीर, अतिवीर, सन्मति, वर्द्धमान और वीर। इन समस्त नामों का स्मरण करते हुए तीन प्रदक्षिणा देकर साधर्मियों को पूजनार्थ अर्घ्य देना चाहिए। व्रत पालन करनेवालों को उन दिनों उनकी कथाएँ सुननी चाहिए, जिन्होंने उक्त व्रत का पालन कर स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति की है। चित्त को स्थिर कर श्री अरहन्तदेव का ध्यान करना अत्युत्तम है, कारण उनके ध्यान से त्रैसठ शलाकाओं के पद प्राप्त

होते हैं। रात्रि को पृथ्वी पर शयन तथा तीर्थंकर आदि महापुरुषों की स्तुति करनी चाहिए। जिनधर्म की प्रभावना इन्द्रियों को वश में करनेवाली हैं। इसके द्वारा भव्यजीव भवसागर से पार उतरते रहते हैं। अतएव प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य होता है कि वह प्रभावना करे। लब्धिविधान व्रत तीन दिनों तक बराबर करते रहना चाहिए। वह कर्म नाशक एवं इच्छित फल देनेवाला है। यह व्रत तीन वर्ष तक करना चाहिए। इसके बाद उद्यापन क्रिया करें। उद्यापन के लिए एक सुभव्य जिनालय का निर्माण करायें, जो हर प्रकार से शोभायुक्त हो। वह पापनाशक और पुण्यराशि का कारण होता है। उक्त जिनालय में श्रीवर्द्धमानस्वामी की सुन्दर प्रतिमा विराजमान करनी चाहिए, जो आपत्तिरूपी लताओं को नष्ट करनेवाली है। इस प्रकार मन, वचन, काय से शुद्ध होकर शान्ति विधान करना चाहिए। श्री वर्द्धमानस्वामी के जिनालय में सुगन्धित जल से पूर्ण सुवर्ण के पाँच कलश देने चाहिए एवं यथाशक्ति जिनालय में योग्य द्रव्य का दान करना चाहिए। भगवान की प्रतिमा के लिये सुवर्ण का सिंहासन प्रदान करे, जिससे वह अरहन्त देव के चरणकमलों की कान्ति से सदैव प्रकाशित होता रहे। एक भामण्डल भी प्रदान करे। वह सोने का बना हुआ हो और जिसमें रत्न जड़े हों। जिसकी कान्ति सूर्य मण्डल के प्रकाश को भी क्षीण कर देती हो। भगवान के कथनानुसार शास्त्र लिखाकर शास्त्र भण्डार में समर्पित करें, जिसे श्रवण कर लोग कुबुद्धि से अन्धे और बधिर न हो जायें। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्र से उत्तम पात्रों को दान देना चाहिए। जिन्हें शत्रु-मित्र सब समान दिखते हों, वे महामुनिश्वर उत्तम पात्र हैं। जो देशव्रत धारक हैं, वे मध्यम पात्र कहलाते हैं, और जो असंयत सम्यग्दृष्टि हैं, वे जघन्य पात्र हैं। उन्हें भोजन कराना चाहिए और

भोग, सम्पत्ति, लाभ की आकांक्षा से निरपेक्ष होकर दान देना चाहिए। पात्रदान अमृत के तुल्य होता है। मिथ्यादृष्टि, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र को धारण करनेवाले, फिर भी हिंसा का जिन्होंने त्याग कर दिया है। वे कुपात्र हैं एवं जिन्होंने न तो चारित्र धारण किया और न कोई व्रत किया, वे हिंसक मिथ्यादृष्टि जीव अपात्र कहे जाते हैं। अयोग्य क्षेत्र में बोये हुए बीज की तरह इन्हें दिया हुआ दान नष्ट हो जाता है अर्थात् कुभोगभूमि की उपलब्धि होती है। जिस प्रकार नीम के वृक्ष में छोड़ा हुआ जल कड़वा ही होता है तथा सर्प को पिलाया हुआ दूध विष ही होता है, उसी प्रकार अपात्र को दिये हुए दान से विपरीत फल की प्राप्ति होती है। अर्थात् वह दान व्यर्थ चला जाता है। साथ ही आर्यिकाओं के लिए भक्ति के साथ शुद्ध सिद्धान्त की पुस्तकें देनी चाहिए। उन्हें पहनने के लिए वस्त्र तथा पीछी, कमंडलु देने चाहिए। श्रावक-श्राविकाओं को आभरण, कीमती वस्त्र और श्रीफल समर्पित करे। जो स्त्री-पुरुष दीन और दुर्बल हैं-दीन हैं, हीन हैं अथवा किसी दुःख से दुःखी हैं, उन्हें दयापूर्वक भोजन समर्पित करे। जीवों को अभयदान दे, जिससे सिंह व्याघ्रादि किसी भी हिंसक जीव का भय न रहे। जो लोग कुष्ट से पीड़ित हैं, वात, पित्त, कफादि रोग से दुःखी हैं, उन्हें यथायोग्य औषधि प्रदान करे। किन्तु जिनके पास उद्यापन के लिए इतनी सामग्री मौजूद न हो, उन्हें भक्ति करनी चाहिए और अपनी असमर्थता नहीं समझनी चाहिए। कारण शुद्धभाव ही पुण्य सम्पादन में सहयोग प्रदान करता है। उन्हें उतना ही फल प्राप्त करने के लिए तीन वर्ष तक और व्रत करना उचित है। आरम्भ में इस व्रत का पालन श्री ऋषभदेव के पुत्र अनंत वीर ने किया, जिसकी कथा आदि पुराण में विस्तार से वर्णित है। *यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यह व्रत सम्यग्दर्शनपूर्वक धारण करने पर ही इष्ट फलदाता*

है; इसलिए तत्त्वविचार और निर्णय पूर्वक स्वशुद्धात्मा के लक्ष्य से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति अनिवार्य है।

मुनिराज की अमृत वाणी सुनकर वहाँ उपस्थित राजा ने अनेक श्रावक-श्राविकाओं के साथ एवं उन तीनों कन्याओं ने भी लब्धिविधान नामक व्रत धारण किये। सत्य है, जो भव्य हैं तथा जिनकी कामना मोक्ष-प्राप्ति की है, वे शुभकार्य में देर नहीं करते। भवितव्यता के साथ संसारी जीवों की बुद्धि भी तद्नुरूप हो जाती है।

मुनिराज के उपदेश से उन तीनों कन्याओं ने उद्यापन के साथ लब्धिविधान व्रत किया और श्रावकों के व्रत धारण किये। उन्होंने उत्तम क्षमा आदि दस धर्म तथा शीलव्रत धारण किये। कालान्तर में उन तीनों कन्याओं ने जिनमंदिर में पहुँचकर मन-वचन-कर्म से शुद्धतापूर्वक भगवान की विधिवत पूजा की। इसके पश्चात् आयुपूर्ण होने पर उन तीनों कन्याओं ने समाधिमरण धारण किये, अरहन्त देव के बीजाक्षर मन्त्रों का स्मरण किया तथा भक्तिपूर्वक उनके चरणों में वे नत हुईं। मृत्यु के पश्चात् उनका स्त्रिलिंग परिवर्तित हो गया और वे प्रभावशाली देव हो गये। उनके शरीर यौवन से सुशोभित हुए। उन्हें अवधिज्ञान से ज्ञात हो गया कि वे लब्धिविधान व्रत के फलस्वरूप स्वर्ग में देव हुए हैं। वे सदा देवांगनाओं के साथ सुख भोगते थे। उनका शरीर पाँच हाथ ऊँचा, उनकी आयु दश सागर की तथा वे विक्रियाऋद्धि से सम्पन्न थे। उनकी मध्यम षटलेश्या थी और तीसरे नरक तक का उन्हें अवधिज्ञान था। वे भगवान सर्वज्ञदेव के चरणों की इस प्रकार सेवा किया करते थे, जिस प्रकार एक भ्रमर सुगन्धित कमल पुष्पों पर लिपटा रहता है। साथ ही अनेक देव-देवियाँ भी उनके चरणों की सेवा किया करती थीं।

इस ओर राजा महीचन्द्र ने भी संसार की अनित्यता समझकर अंगभूषण मुनिराज से जिन-दीक्षा ग्रहण की। वे इन्द्रियों का सर्वदा दमन कर महा तपश्चरण करने लगे तथा परीषहों को जीतकर उन्होंने मूलगुण और उत्तरगुणों को धारण किया।

❀❀❀

जम्बूद्वीप के अन्तर्गत एक प्रसिद्ध भरतक्षेत्र हैं। उसमें धर्मात्मा लोगों के निवास करने योग्य मगध नाम का एक देश है। उसी देश में ब्राह्मण नाम का अत्यन्त रमणीक एक नगर है। वहाँ बड़े-बड़े वेदज्ञ निवास करते हैं तथा वह नगर वेदध्वनि से सदा गूँजता रहता है। वह नगर धन-धान्य से परिपूर्ण है और वहाँ के बाजारों की पंक्तियाँ अत्यन्त मनोहर हैं। अनेक चैत्यालयों से सुशोभित ब्राह्मण नगर बहुपदार्थों से परिपूर्ण हुआ था। वहाँ अनेक प्रकार के जलाशय थे—वृक्ष थे। उनमें सब प्रकार के धान्य उत्पन्न होते थे। वहाँ के मकानों की ऊँची पंक्तियाँ अपनी अपूर्व विशेषता प्रकट करती थीं। वहाँ के निवासी मनुष्य भी सदाचारी और सौभाग्यशाली थे। तरुण-तरुणियाँ क्रीड़ारत रहते थे। वहाँ की सुन्दरियाँ अपनी सुन्दरता में रम्भा को भी मात करती थीं। उसी नगर में शांडिल्य नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह विद्याओं में निपुण और सदाचारी था। दानी तथा तेजस्वी था। उसकी पत्नी का नाम स्थंडिला था। वह सौभाग्यवती, पतिव्रता और रति के समान रूपवती थी। केवल यही नहीं, उसका हृदय नम्र और दयालु था। वह मधुर भाषण करनेवाली एवं याचकों को दान देनेवाली थी। किन्तु उस ब्राह्मण की केसरी नाम की एक दूसरी ब्राह्मणी थी। वह भी सर्वगुणों से सम्पन्न तथा अपने पति को सदा प्रसन्न रखती थीं। एक दिन की घटना है। स्थंडिला अपनी कोमल शैय्या पर सोयी हुई थी। उसने रात में पुत्र

उत्पन्न होनेवाले शुभ स्वप्न देखे। उसी दिन एक बड़ा देव स्वर्ग से चयकर स्थंडिला के गर्भ में आया। गर्भावस्था के बाद स्थंडिला का रूप निखर उठा। वह मोतियों से भरी हुई सीप जैसी सुन्दर दिखने लगी। उस ब्राह्मणी का मुख कुछ श्वेत हो गया था, मानों पुत्ररूपी चन्द्रमा समस्त संसार में प्रकाश फैलाने की सूचना दे रहा है। शरीर में किंचित् कृशता आ गयी थी। स्तनों के अग्रभाग श्याम हो गये थे। मानों वे पुत्र के आगमन की सूचना दे रहे हों। उस समय स्थंडिला जिनदेव की पूजा में तत्पर रहने लगी, जैसे इन्द्राणी सदा भगवान की पूजा में चित्त लगाती है। स्थंडिला शुद्ध चारित्र धारण करनेवाले सम्यक्ज्ञानी मुनियों को अनेक पापनाशक शुद्ध आहार देती थी। सूर्योदय के समय जिस समय शुभग्रह शुभरूप से केन्द्र में थे; उस समय श्री ऋषभदेव की रानी यशस्वती की तरह, स्थंडिला ने मनोहर अंगों के धारक पुत्र को उत्पन्न किया। उस काल सारी दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं और चारों ओर सुगन्धित वायु संचरित होने लगी तथा आकाश में जयघोष होने लगे। घर के समस्त स्त्री-पुरुषों में आनन्द छा गया। चारों ओर मनोहर बाजे बजने लगे। जिस तरह जयन्त से इन्द्र और इन्द्राणी को प्रसन्नता होती है; उसी प्रकार ब्राह्मण और ब्राह्मणी को अपूर्व प्रसन्नता हुई। शाण्डिल्य ने मणि, सोने, चाँदी, वस्त्र आदि मुँहमाँगे दान दिये। स्त्रियाँ मंगल गान गा रही थीं। जैसे किसी दरिद्र को खजाना देखकर प्रसन्नता होती है, जैसे पूर्ण चन्द्रमा को देखकर समुद्र उमड़ता है, उसी प्रकार ब्राह्मण अपने पुत्र का मुँह देखकर प्रसन्नता से विह्वल हो रहा था। ठीक उसी समय एक निमित्तज्ञानी ने ज्योतिष के आधार पर बतलाया कि यह पुत्र गौतमस्वामी के नाम से प्रख्यात होगा। ब्राह्मण का वह पुत्र अपने पूर्वपुण्य के उदय से सूर्य सा तेजस्वी और कामदेव सा

कान्तियुत् था। एक दूसरा देव भी स्वर्ग से चय कर उसी स्थंडिला के गर्भ में आया। वह ब्राह्मण का गार्ग्य नामक पुत्र हुआ। यह भी समस्त कलाओं से युक्त था। इसी प्रकार एक तीसरा देव स्वर्ग से चयकर केसरी के उदर में आया, जो भार्गव नामक पुत्र हुआ। ये तीनों ब्राह्मण पुत्र, कुन्ती के पुत्र पाण्डवों की भाँति प्रेम से रहते थे। आयुवृद्धि के साथ उनकी कान्ति गुण और पराक्रम भी बढ़ते जाते थे। उन्होंने व्याकरण, छन्द, पुराण, आगम और सामुद्रिक विद्याएँ पढ़ डाली। ब्राह्मण का सबसे बड़ा पुत्र गौतम ज्योतिष शास्त्र, वैद्यक शास्त्र, अलंकार, न्याय आदि सब में निपुण हुआ। देवों के गुरु वृहस्पति की तरह गौतम ब्राह्मण भी किसी शुभ ब्राह्मणशाला में पाँच सौ शिष्यों का अध्यापक हुआ। उसे अपने चौदह महाविद्याओं में पारंगत होने का बड़ा ही अभिमान था। वह विद्वता के मद में चूर रहता था।

राजा श्रेणिक! जो व्यक्ति परोक्ष में तीर्थंकर परमदेव की वन्दना करता है, वस्तुत वह तीनों लोकों में वन्दनीय होता है और जो प्रत्यक्ष में वन्दना करता है; वह इन्द्रादिकों द्वारा पूजनीय होता है। राजन्! **इस व्रतरूपी वृक्ष की जड़ सम्यग्दर्शन ही है।** अत्यन्त शान्त परिणामों का होना स्कन्ध है, करुणा शाखाएँ हैं। इसके पत्ते पवित्र शील हैं तथा कीर्ति फूल हैं। अतएव यह व्रतरूपी वृक्ष तुम्हें मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति कराये। उत्तम धर्म के प्रभाव से ही राज्यलक्ष्मी एवं योग्य लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। धर्म के ही अद्भुत प्रभाव से इन्द्रपद प्राप्त होता है, जिनके चरणों की सेवा देव करते हैं। चक्रवर्ती की ऐसी विभूति प्रदान करानेवाला धर्म ही है। यही नहीं, तीर्थंकर जैसा सर्वोत्तम पूज्यपद भी धर्म के प्रभाव से ही प्राप्त होता है। अतएव तू सर्वदा धर्म में लीन रह।

चतुर्थ अधिकार

भरतक्षेत्र के अन्तर्गत ही अत्यन्त रमणीक एवं विभिन्न नगरों से सुशोभित विदेह नाम का एक देश है। उस देश में कुण्डपुर नामक एक नगर अपनी भव्यता के लिए प्रख्यात है। वह नगर बड़े ऊँचे कोटों से घिरा हुआ है एवं वहाँ धर्मात्मा लोग निवास करते हैं। वहाँ के मणि, कांचन आदि देखकर यही प्रतीत होता है कि वह दूसरा स्वर्ग है। उस नगर में सिद्धार्थ नाम के एक राजा राज्य करते थे। उनकी धार्मिकता प्रसिद्ध थी। वे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों को सिद्ध करनेवाले थे। उन्हें विभिन्न राजाओं की सेवाएँ प्राप्त थी। इतना ही नहीं, सुन्दरता में कामदेव को परास्त करनेवाले, शत्रुजीत, दाता और भोक्ता थे। नीति में भी निपुण थे—अर्थात् समस्त गुणों के आगार थे। उनकी रानी का नाम त्रिशलादेवी था। रानी की सुन्दरता का क्या कहना—चन्द्रमा के समान मुख मण्डल, मृग की सी आँखें, कोमल हाथ और लाल अधर अपनी मनोहर छटा दिखला रहे थे। उसकी जाँघें कदली के स्तम्भों सी थीं। नाभि नम्र थी, उदर कृश था, स्तन उन्नत और कठोर थे, धनुष के समान भौहें एवं शुक के समान नाक थी। ऐसी रूपवती महारानी के साथ राजा सिद्धार्थ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे थे।

इन्द्र की आज्ञा थी—भगवान महावीरस्वामी के जन्म कल्याणक के १५ मास पूर्व से ही सिद्धार्थ के घर रत्नों की वर्षा करने की। देव लोग इन्द्र की आज्ञा का अक्षरशः पालन करते थे।अष्टादिक कन्यायें एवं और भी मनोहर देवियाँ राजमाता की सेवा में तत्पर रहती थीं। एक दिन महारानी त्रिशला देवी कोमल सज्जा पर सोयी

हुई थीं। उन्होंने पुत्रोत्पत्ति की सूचना देनेवाले सोलह स्वप्न देखे।— ऐरावत हाथी, श्वेत बैल, गरजता हुआ सिंह, शुभ लक्ष्मी, भ्रमरों के कलवर से सुशोभित दो पुष्प मालायें, पूर्ण चन्द्रमा, उदय होता हुआ सूर्य, सरोवर में क्रीड़ारत दो मछलियाँ, सुवर्ण के दो कलश, निर्मल सरोवर, तरंगयुत समुद्र, मनोहर सिंहासन, आकाश में देवों का विमन, सुन्दर नाग-भवन, कान्तिपूर्ण रत्नों की राशि और बिना धूम्र की अग्नि।

प्रात:काल बाजों के शब्द सुनकर महारानी उठीं। वे पूर्ण शृंगार कर महाराज के सिंहासन पर जा बैठीं। उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर महाराज से रात के स्वप्न कह सुनाये। उत्तर में महाराज सिद्धार्थ क्रम से स्वप्नों के फल कहने लगे—ऐरावत हाथी देखने का फल—वह पुत्र तीनों लोकों का स्वामी होगा। बैल देखने का फल— धर्म प्रचारक और सिंह देखने का फल अद्भुत पराक्रमी होगा। लक्ष्मी का फल यह होगा कि देव लोग सुमेरुपर्वत पर उसका अभिषेक करेंगे। मालाओं के देखने का फल, उसे अत्यन्त यशस्वी होना चाहिए तथा चन्द्रमा का फल यह होगा कि वह मोहनीय कर्मों का नाशक होगा। सूर्य के देखने से सत्पुरुषों को धर्मोपदेश देनेवाला होगा। दो मछलियों के देखने का फल सुखी होगा और कलश देखनें से उसका शरीर समस्त शुभ लक्षणों से परिपूर्ण होगा। सरोवर देखने से लोगों की तृष्णा दूर करेगा तथा समुद्र देखने से केवलज्ञानी होगा। सिंहासन देखने से वह स्वर्ग से आकर अवतार ग्रहण करेगा, नाग भवन देखने से वह अनेक तीर्थों का करनेवाला होगा एवं रत्नराशि देखने से वह उत्तम गुणों का धारक होगा तथा अग्नि देखने से कर्मों का विनाशक होगा। इस प्रकार पति द्वारा स्वप्नों का हाल सुनकर महारानी की प्रसन्नता बहुत बढ़

गयी। वे जिनेन्द्र भगवान के अवतार की सूचना पाकर अपने जीवन को सार्थक मानने लगीं।

स्वप्न के आठवें दिन अर्थात् आषाढ़ शुक्ल षष्टी के दिन प्राणत स्वर्ग के पुष्पक विमान के द्वारा आकर इन्द्र के जीव ने महारानी त्रिशला के मुख में प्रवेश किया। उस समय इन्द्रादि देवों के सिंहासन कम्पित हो गये। देवों को अवधिज्ञान के द्वारा ज्ञात हो गया। वे सब वस्त्राभरण लेकर आये और माता की पूजा (सम्मान) कर अपने स्थान को लौट गये। त्रिशला देवी ने चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन शुभग्रह और शुभलग्न में भगवान महावीरस्वामी को जन्म दिया। उस समय दिशाएँ निर्मल हो गयीं और वायु सुगन्धित बहने लगी। आकाश से देवों ने पुष्पों की वर्षा की और दुंदुभि बजायी। जन्म के समय भी भगवान के महापुण्य के उदय होने से इन्द्रों के सिंहासन कांप उठे। उन्होंने अवधिज्ञान से जान लिया कि भगवान महावीरस्वामी ने जन्म ग्रहण किया। समस्त इन्द्र और चारों प्रकार के देव गाजे-बाजे के साथ कुण्डपुर में पधारे। राजमहल में पहुँचकर देवों ने माता के समक्ष विराजमान भगवान को देखा और भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार किया। उस समय इन्द्राणी ने एक मायावी बालक बनाकर माता के सामने रख दिया और उस बालक को उठाकर सौधर्म इन्द्र को सौंप दिया। सौधर्म इन्द्र ने भी उस बालक को ऐरावत हाथी पर विराजमान किया और आकाश मार्ग द्वारा चैत्यालयों से सुशोभित मेरुपर्वत पर ले गया। देवों ने मंगल ध्वनि की, बाजे बजने लगे, किन्नर जाति के देव गाने लगे और देवांगनाओं ने श्रृंगार दर्पण ताल आदि मंगल द्रव्य धारण किये। सब लोग मेरु पर्वत की पाण्डुकशिला पर पहुँचे। वह शिला सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी और आठ योजन ऊँची थी। उस पर एक अत्यन्त

मनोहर सिंहासन था। देवों ने उसी सिंहासन पर भगवान को आसीन किया और वे नम्रता और भक्तिपूर्वक उनका अभिषेकोत्सव करने लगे। इन्द्रादिक देवों ने मणि और सुवर्ण निर्मित एक हजार आठ कलशों द्वारा क्षीरोदधि समुद्र का जल लाकर भगवान का अभिषेक किया। इस अभिषेक से मेरुपर्वत तक काँप उठा, पर बालक भगवान निश्चलरूप से बैठे रहे। उस समय देवों ने भगवान के स्वाभाविक बल का अनुमान लगा लिया। इसके पश्चात् देवों ने जन्म-मरणादि दुखों की निवृत्ति करने के लिए चन्दनादि आठ शुभद्रव्यों से भगवान की पूजा की। भगवान जिनेन्द्र की पूजा सूर्य की प्रभा के समान धर्म प्रकाश करनेवाली और पापांधकार का नाश करनेवाली होती है। वह भव्य जीवरूपी कमलों को प्रफुल्लित करती है। देवों ने उस बालक का शुभ नाम वीर रखा। अप्सरायें तथा अनेक देव उस समय नृत्य कर रहे थे। मति, श्रुत और अवधिज्ञानों से परिपूर्ण भगवान को बालक के योग्य वस्त्राभूषणों से सुशोभित किया गया तथा पुनः देवों ने अपनी इष्टसिद्धि के लिए स्तुति आरम्भ की—

जिस प्रकार सूर्य की प्रभा के बिना कमलों की प्रफुल्लता सम्भव नहीं, उसी प्रकार हे वीर! आपके वचन के अभाव में प्राणियों को तत्त्वज्ञान प्राप्त होना कदापि सम्भव नहीं।

इस प्रकार स्तुति समाप्त होने पर इन्द्रादिक देवों ने भगवान को पुनः ऐरावत पर आसीन किया और आकाशमार्ग द्वारा कुण्डपुर आये। उन्होंने भगवान के माता-पिता को यह कहते हुए बालक को समर्पित कर दिया कि आपके पुत्र को मेरुपर्वत पर अभिषेक कराकर लाये हैं। उन देवों ने दिव्य आभरण और वस्त्रों से माता-पिता की पूजा की। उनका नाम वीर निरूपण किया और नृत्य

करते हुए अपने स्थान को चल दिये। इसके पश्चात् बालक भगवान, इन्द्र की आज्ञा से आये हुए तथा बालक की अवस्था धारण किये हुए देवों के साथ क्रीड़ा करने लगे। पश्चात वे बाल्यावस्था को पार कर यौवनावस्था को प्राप्त हुए। उनकी कान्ति सुवर्ण के समान तथा शरीर की ऊँचाई सात हाथ की थी। उनका शरीर निःस्वेदता आदि दश अतिशयों से सुशोभित था। इस प्रकार भगवान ने कुमारकाल के तीस वर्ष व्यतीत किये। इस अवस्था में भगवान बिना किसी कारण कर्मों को शान्त करने के उद्देश्य से विरक्त हो गये। उन्हें अपने आप-वैराग्य हो गया। तत्काल ही लौकान्तिक देवों का आगमन हुआ। उन्होंने नमस्कार कर कहा—' भगवान! तपश्चरण के द्वारा कर्मों को विनष्ट कर शीघ्र ही केवलज्ञान प्राप्त कीजिए। वे ऐसा निवेदन कर वापस चले गये। भगवान ने समस्त परिजनों से विदा ली। पुनः मनोहर पालकी में सवार हुए। इन्द्र ने पालकी उठायी और आकाश द्वारा भगवान को नामखण्ड नामक वन में पहुँचाया। वहाँ पहुँचकर इन्द्र ने पालकी उतार दी और भगवान एक स्फटिक शिला पर उत्तर दिशा की ओर मुँह कर विराजमान हो गये। अत्यन्त बुद्धिमान भगवान ने मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन सायंकाल के समय दीक्षा ग्रहण की और सर्व प्रथम उन्होंने पृष्ठोपवास करने का नियम धारण किया। भगवान के पंचमुष्ठि लोंच वाले केशों को इन्द्र ने मणियों के पात्र में रखा और उन्हें क्षीर सागर में पधराया। अन्य देवगण चतुःज्ञान विभूषित भगवान को नमस्कार कर अपने-अपने स्थान को चले गये। पारणा के दिन भगवान कुल्य नामक नगर के राजा कुल्य के घर गये। राजा ने नवधाभक्ति के साथ भगवान को आहार दिया। आहार के बाद वे प्रभु वन को चले गये। उस आहारदान का फल यह हुआ कि देवों

ने राजा के घर पंचाश्चर्यों की वर्षा की। सत्य है, पात्रदान से धर्मात्मा लोगों को लक्ष्मी प्राप्त होती है।

एक दिन की घटना है। भगवान अतिमुक्त नामक श्मशान में प्रतिमायोग धारण कर विराजमान थे। उस समय भवनाम के रुद्र (महादेव) ने उर पर अनेक उपसर्ग किया, पर उन्हें जीतने में समर्थ न हो सका। अन्त में उसने आकर भगवान को नमस्कार किया और उनका नाम महावीर रखा। इस प्रकार तप करते हुए भगवान को जब बारह वर्ष व्यतीत हो गये, तब एक ऋजुकुल नाम की नदी के समीपवर्ती जृंभक ग्राम में वे पृष्टोपवास (तेला) धारण कर किसी शिला पर आसीन हुए। उस दिन वैशाख शुक्ल दशमी थी। उसी दिन उन्होंने ध्यानरूपी अग्नि से घातिया कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञान की प्राप्ति की। केवलज्ञान हो जाने पर शरीर की छाया न पड़ना आदि दशों अतिशय प्रकट हो गये। उस समय इन्द्रादि ने आकर भगवान को भक्ति के साथ नमस्कार किया। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने चार कोस लम्बा-चौड़ा समवसरण निर्मित किया। वह मानस्तम्भ, ध्वजा दण्ड, घंटा, तोरण, जल से परिपूर्ण खाई, सरोवर, पुष्प वाटिका, उच्च धुलि प्रकार नृत्य शालाओं, उपवनों से सुशोभित था तथा वेदिका, अन्तर्ध्वजा सुवर्णशाला, कल्पवृक्ष आदि से विभूषित था। उसमें अनेक महलों की पंक्तियाँ थीं। वे मकान सुवर्ण और मणियों से बनाये गये थे। वहाँ ऐसी मणियों की शालायें थीं जो गीत और बाजों से सुशोभित हो रही थीं। समवसरण के चारों ओर चार बड़े-बड़े फाटक थे। वे सुवर्ण के निर्मित भवनों से भी अधिक मनोहर दिखते थे। उसमें बारह सभायें थीं, जिसमें मुनि, अर्जिका, कल्पवासी देव, ज्योतिषी देव, व्यंतर देव, भवनवासी देव, कल्पवासी देवांगनाएँ, ज्योतिषीदेवों की देवांगनाएँ, भवनवासी

देवों की देवांगनाएँ, मनुष्य तथा पशु उपस्थित थे। अशोकवृक्ष, दुंदुभी, छत्र, भामण्डल, सिंहासन, चमर, पुष्पवृष्टि और दिव्यध्वनि उक्त आठों प्रातिहार्यों से श्रीवीर भगवान सुशोभित हो रहे थे। इसके अतिरिक्त अठारह दोषों से रहित और चौतीस अतिशयों से सुशोभित थे। अर्थात् विश्व की समग्र विभूतियाँ उनके साथ विराजमान थीं। इस प्रकार भगवान को आसीन हुए तीन घण्टे से अधिक हो गये, पर उनकी दिव्यवाणी मौन रही। भगवान को मौनावस्था में देखकर सौधर्म के इन्द्र ने अवधिज्ञान से विचार किया कि यदि गौतम का आगमन हो जाए तो भगवान का दिव्यवाणी उच्चरित हो। गौतम को लाने के विचार से इन्द्र ने एक वृद्ध का रूप बना लिया, जिसके अंग-अंग काँप रहे थे। वह वृद्ध ब्राह्मण नगर की गौतमशाला में जा पहुँचा। वृद्ध के काँपते हुए आथों में एक लकड़ी थी। उसके मुँह में एक भी दाँत नहीं थे, जिससे पूरे अक्षर भी नहीं निकल पाते थे। उस वृद्ध ने शाला में पहुँच कर आवाज लगायी—ब्राह्मणो! इस शाला में कौन सा व्यक्ति है, जो शास्त्रों का ज्ञाता हो और मेरे समस्त प्रश्नों का उत्तर दे सकता हो? इस संसार में ऐसे कम मनुष्य हैं जो मेरे काव्यों का विचार कर ठीक-ठीक उत्तर दे सकें। यदि इस श्लोक का ठीक अर्थ निकल जाएगा तो मेरा काम बन जाएगा, आप धर्मात्मा हैं, अत: मेरे श्लोक का अर्थ बतला देना आपका कर्तव्य है। इस तरह तो अपना पेट पालनेवालों की संख्या संसार में कम नहीं है, पर परोपकारी जीवों की संख्या थोड़ी है। मेरे गुरु इस समय ध्यान में लगे हैं और मोक्ष पुरुषार्थ को सिद्ध कर रहे हैं, अन्यथा वे बतला देते। यही कारण है कि आपको कष्ट देने के लिए उपस्थित हुआ हूँ। आपका कर्तव्य होता है कि इसका समाधान कर दें।

उस वृद्ध की बातें सुनकर अपने पाँच सौ शिष्यों द्वारा प्रेरित गौतम शुभ वचन कहने लगा—हे वृद्ध ! क्या तुझे नहीं मालूम, इस विश्व में अनेक शास्त्रों में पारंगत और पाँच सौ शिष्यों का प्रतिपालक मैं प्रसिद्ध हूँ। तुम्हें अपने काव्य का बड़ा अभिमान हो रहा है। कहो तो सही, उसका अर्थ मैं अभी बतला दूँ। पर यह तो बताओ कि मुझे क्या दोगे ? उस वृद्ध ने कहा—ब्राह्मण ! यदि आप मेरे काव्य का समुचित अर्थ बतला देंगे तो मैं आपका शिष्य बन जाऊँगा। किन्तु यह भी याद रखिये कि यदि आपने यथावत् उत्तर नहीं दिया तो आपको भी अपनी शिष्यमण्डली के साथ मेरे गुरु का शिष्य हो जाना पड़ेगा। गौतम ने भी स्वीकृति दे दी। इस प्रकार इन्द्र और गौतम दोनों ही प्रतिज्ञा में बँध गये। सत्य है, ऐसा कौन अभिमानी है जो न करनेयोग्य काम नहीं कर डालता। इसके पश्चात् सौधर्म इन्द्र ने गौतम के अभिमान को चूर करने के उद्देश्य से आगम के अर्थ को सूचित करनेवाला तथा गम्भीर अर्थ से भरा हुआ एक काव्य पढ़ा। वह काव्य यह था—

धर्मद्वयं त्रिविधकाल समग्रकर्म,
षड् द्रव्यकाय सहिताः समयैश्च लेश्याः।
तत्त्वानि संयमगतीसहिता पदाथ—
रंगप्रवेदमनिशवदचास्ति कायम्।

धर्म के दो भेद कौन-कौन से हैं। वे तीन प्रकार के काल कौन हैं, उनमें काय सहित द्रव्य कौन है, काल किसे कहते हैं, लेश्या कौन-कौन सी और कितनी हैं। तत्त्व कितने और कौन-कौन हैं, संयम कितने हैं, गति कितनी और कौन है तथा पदार्थ कितने और कौन हैं, श्रुतज्ञान, अनुयोग और सास्ति काय कौन और कितने हैं, यह आप बतलाइये।

वृद्ध के मुँह से श्लोक सुनकर गौतम को बड़ी ग्लानि हुई। उसने मन में ही विचार किया कि मैं इस श्लोक का अर्थ क्या बतलाऊँ। इस वृद्ध के साथ वाद-विवाद करने से कौन सी लाभ-की प्राप्ति होगी। इससे तो अच्छा हो कि इसके गुरु से शास्त्रार्थ किया जाए। गौतम ने बड़े अभिमान से कहा—चल रे ब्राह्मण! अपने गुरु के निकट चल। वहीं पर इस विषय की मीमांसा होगी। वे दोनों विद्वान सबको साथ लेकर वहाँ से रवाना हुए। मार्ग में, गौतम ने विचार किया कि जब इस वृद्ध के प्रश्न का उत्तर मुझसे नहीं दिया गया, तो इसके गुरु का उत्तर कैसे दिया जाएगा। वह तो अपूर्व विद्वान होगा। इस प्रकार से विचार करता हुआ गौतम समवसरण में पहुँचा। इन्द्र को अपनी कार्य सिद्धि पर बड़ी प्रसन्नता हुई। सत्य है, सिद्धि हो जाने पर किसे प्रसन्नता नहीं होती। अर्थात् सबको होती है। वहाँ मानस्तम्भ अपनी अद्भुत शोभा से तीनों लोकों को आश्चर्य में डाल रहा था। उसके दर्शनमात्र से ही गौतम का दर्प चूर्ण-विचूर्ण हो गया। उसने विचार कि जिस गुरु के सन्निकट इतनी विभूति विद्यमान हो, वह क्या पराजित किया जा सकता है? असम्भव है। इसके बाद वीरनाथ भगवान का दर्शन कर वह गौतम उनकी स्तुति करने लगा—

प्रभो! आप कामरूपी योद्धाओं को परास्त करने में निपुण हैं। सत्पुरुषों को उपदेश देनेवाले हैं। अनेक मुनिराजों का समुदाय आपकी पूजा करता है। आप तीनों लोकों के तारक और उद्धारक हैं। आप कर्म-शत्रुओं को नाश करनेवाले हैं तथा त्रैलोक्य के इन्द्र आपकी सेवा में लगे रहते हैं।—ऐसी विनम्र स्तुतिकर गौतम, भगवान के चरणों में नत हुआ। इसके पश्चात् वह ऐहिक विषयों से विरक्त हो गया। कालान्तर में उसने पाँच सौ शिष्य मण्डली

तथा अन्य दो भ्राताओं के साथ जिन–दीक्षा ले ली। सत्य है, जिन्हें संसार का भय है, जो मोक्षरूपी लक्ष्मी के उपासक हैं, वे जरा भी देर नहीं करते।

श्री वीरनाथ भगवान के समवसरण में चारों ज्ञानों से विभूषित, इन्द्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति आदि ग्यारह गणधर हुए थे। उन्होंने पूर्वभव में लब्धिविमान नामक व्रत किया था, जिसके फलस्वरूप वे गणधर पद पर आसीन हुए थे। दूसरे लोग भी, जो इस व्रत का पालन करते हैं, उन्हें ऐसी ही विभूतियाँ प्राप्त होती हैं। इसके बाद भगवान की दिव्यवाणी उच्चरित होने लगी। मोहांधकार को नाश करनेवाली वह दिव्यध्वनि भव्यरूपी कमलों को प्रफुल्लित करने लगी। भगवान ने जीव, अजीव, आदि सप्ततत्त्व, छह द्रव्य, पंच आस्तिकाय, जीवों के भेद आदि लोकाकाश के पदार्थों के भेद और उनके स्वरूप बतलाये। समस्त परिग्रहों को परित्याग करनेवाले गौतम ने पूर्वपुण्य के उदय से भगवान के समस्त उपदेशों को ग्रहण कर लिया। जैनधर्म के प्रभाव से भव्यों की संगति प्राप्त होती है, उपयुक्त कल्याणकारक मधुर वचन, अच्छी बुद्धि आदि सर्वोत्तम विभूतियाँ सहज में ही प्राप्त होती हैं। इस धर्म के प्रभाव से उत्तम सन्तान की प्राप्ति और चन्द्रमा तथा बर्फ के समान शुभकीर्ति प्राप्त होती हैं। धर्म के प्रभाव से ही बड़ी विभूतियाँ और अनेक सुन्दरी स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं और सुरेन्द्र, नगेन्द्र और नागेन्द्र के पद भी सुलभ हो जाते हैं।

इसके पश्चात् मुनि, देव मनुष्य आदि समस्त भव्यजीवों को प्रसन्न करते हुए महाराज श्रेणिक ने भगवान से प्रार्थना की कि हे भगवन! हे वीर प्रभो! उस धर्म को सुनने की हमारी प्रबल इच्छा

है कि जिससे स्वर्ग और मोक्ष के सुख सहज साध्य हैं। आप विस्तारपूर्वक कहिये।

उत्तर में भगवान ने दिव्यध्वनि के द्वारा कहा—राजन! अब मैं मुनि और गृही दोनों के धारण करनेयोग्य धर्म का स्वरूप बतलाता हूँ। तुझे ध्यान देकर सुनना चााहिए। संसाररूपी भवसमुद्र में डुबते हुए जीवों को निकालकर जो उत्तम पद में धारण करा दे, उसे धर्म कहते हैं। धर्म का यही स्वरूप अनादि काल से जिनेन्द्रदेव कहते चले आये हैं। सबसे उत्तम धर्म अहिंसा है। इसी धर्म के प्रभाव से जीवों को चक्रवर्ती के सुख उपलब्ध होते हैं। अतएव समस्त संसारी जीवों पर दया का भाव रखना चाहिए। दया अपार सुख प्रदान करनेवाली एवं दु:खरूपी वृक्षों को काटने के लिये कुठार के तुल्य होती है। सप्त व्यसनों की अग्नि को बुझाने के लिये यह दया ही मेघ स्वरूप है। यह स्वर्ग में पहुँचाने के लिए सोपान है और मोक्षरूपी सम्पत्ति प्रदान करनेवाली है। जो लोग धर्म की साधना के लिए यज्ञादि में प्राणियों की हिंसा करते हैं, वे विषैले सर्प के मुँह से अमृत झरने की आशा रखते हैं। यह सम्भव है कि जल में पत्थर तैरने लगे, अग्नि ठण्डी हो जाए, किन्तु हिंसा द्वारा धर्म की प्राप्ति त्रिकाल में भी सम्भव नहीं हो सकती। जो भील लोग धर्म की कल्पना कर जंगल में आग लगा देते हैं, वे विष खाकर प्राण की रक्षा चाहते हैं। अथवा जो लोलुपी मनुष्य जीवों की हत्या कर उनका माँस खाते हैं, वे महादु:ख देनेवाली नरकगति में उत्पन्न होते हैं और नरक के दु:ख भोगने पड़ते हैं। न तो छाछ से घी निकाला जा सकता है, न बिना सूर्य के दिन हो सकता है, न लेप मात्र में मनुष्य की क्षुधा मिट सकती है; उसी प्रकार हिंसा के द्वारा सुख-प्राप्ति की आशा करना दुराशा मात्र है। प्राणियों पर

दया करनेवाले मनुष्य युद्ध में, वन में, नदी एवं पर्वतों पर भी निर्भय रहते हैं। परहिंसकों की आयु अतिअल्प होती है। या तो वे उत्पन्न होते ही मर जाते हैं, या बाद में किसी समुद्र, नदी आदि में डूबकर मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

इसी प्रकार असत्य भाषण से भी महान पाप लगता है, जिसके पापोदय से नरकादि के दु:ख प्राप्त होते हैं। यद्यपि यश बड़ा आनन्ददायक होता है, परन्तु असत्य भाषण से वह भी नष्ट हो जाता है। असत्य विनाश का घर है, इससे अनेक विपत्तियाँ आती हैं। यह महापुरुषों द्वारा एकदम निन्दनीय है एवं मोक्षमार्ग का अवरोधक है। अतएव आत्मज्ञान से विभूषित विद्वान पुरुषों को चाहिए कि वे कभी असत्य का आश्रय न लें। देवों की आराधना करनेवाले सदा सत्य बोला करते हैं। सत्य के प्रसाद से विष भी अमृत के तुल्य हो जाता है। शत्रु भी मित्र हो जाते हैं, एवं सर्प भी माला बन जाता है। जो लोग असत्य भाषण के द्वारा सद्धर्म प्राप्ति की आकांक्षा करते हैं, वे बिना अंकुर रोपे ही धान्य होने की कल्पना करते हैं।

बुद्धिमान लोगों को चाहिए कि वे हिंसा और असत्य के समान चोरी का भी सर्वथा परित्याग कर दें। चोरी पुण्य-लता को नष्ट करनेवाली तथा आपत्ति की वृद्धि करनेवाली है। चोर को नरक की प्राप्ति होती है, वहाँ छेदन-ताड़न आदि विभिन्न प्रकार के दु:ख भोगने पड़ते हैं। चोर को सब जगह सजा मिलती है, राजा भी प्राणदण्ड की आज्ञा देता है तथा अनेक प्रकार के कष्ट सहन करने पड़ते हैं। जो पुरुष चोरी नहीं करता, उसे जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त करनेवाली मोक्षरूपी स्त्री स्वयं स्वीकार कर लेती है। चोरी का परित्याग कर देने से संसार की सारी विभूतियाँ, सुन्दरी स्त्रियाँ

एवं उत्तम गति की प्राप्ति होती है। जो लोग चोरी करते हुए सुख की आकांक्षा करते हैं, वे अग्नि के द्वारा कमल उत्पन्न करना चाहते हैं। यदि भोजन कर लेने से अजीर्ण का दूर होना, बिना सूर्य के दिन निकलना और बालू पेलने से तेल का निकलना सम्भव भी हो तो भी चोरी से धर्म की प्राप्ति कभी सम्भव नहीं हो सकती।

शीलव्रत के पालन से चारित्र की सदा वृद्धि होती रहती है, नरक आदि के समस्त मार्ग बन्द हो जाते हैं और व्रतों की रक्षा होती है। यह व्रत मोक्षरूपी स्त्री प्रदान करनेवाला है। जो लोग शीलव्रत का पालन नहीं करते, वे संसार में अपना यश नष्ट करते हैं। ब्रह्मचर्य के पालन के अभाव में सारी सम्पदाएँ नष्ट हो जाती हैं और अनेक प्रकार की हिंसायें होती हैं। जो शीलव्रत का यथेष्ट पालन करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं और विलासिनी देवियाँ उनकी सेवा में तत्पर रहती हैं। शीलव्रत का इतना प्रभाव होता है कि अग्नि में शीतलता आ जाती है, शत्रु मित्र बन जाते हैं, तथा सिंह भी मृगवत् बन जाता है। जिस प्रकार लवण के बिना व्यंजन का कोई मूल्य नहीं, उसी प्रकार शीलव्रत के अभाव में समस्त व्रत व्यर्थ हो जाते हैं। इसी शीलव्रत का पालन करनेवाले सेठ सुदर्शन की पूजा अनेक देवों ने मिलकर की थी। इसी तरह की अन्य पौराणिक घटनाएँ भी उल्लेखनीय है, जहाँ शीलव्रतधारियों का सम्मान देवादिकों द्वारा किया गया है।

परिग्रह पापों का मूल है। उससे परिणाम कलुषित हो जाते हैं और वह नीति दया को नष्ट करनेवाला है। संसार के समस्त अनर्थ इसी परिग्रह द्वारा सम्पन्न हुआ करते हैं। यह धर्मरूपी वृक्ष को उखाड़ देता है और लोभरूपी समुद्र को बढ़ा देता है। मनरूपी

हंसों को धमकाता है और मर्यादारूपी तट को तोड़ देता है। क्रोध, मान, माया आदि कषायों को उत्पन्न करनेवाला परिग्रह ही है। वह मार्दव (कोमलता) रूपी वायु को उड़ा देने के लिए वायु सरीखा है और कमलों को नष्ट करने के लिए तुषार के समान है। यह समस्त व्यसनों का घर, पापों की खान और शुभध्यान का काल है, इसे कोई भी बुद्धिमान ग्रहण नहीं कर सकता। जैसे आग, लकड़ी से तृप्त नहीं होती, देव भोगों से तृप्त नहीं होते और उनकी आकांक्षा बढ़ती ही जाती है; उसी प्रकार मनुष्य अपार धनराशि से तृप्त नहीं हो सकते। जो लोग परिग्रह रहित हैं, वे ही वस्तुत: सर्वोत्तम हैं। वे पुण्य संचय के साथ धर्मरूपी वृक्ष उत्पन्न करते हैं और वैसे ही वे धर्मात्मा जैनधर्म का प्रसार करते हैं। इस प्रकार मुनिराज लोग अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह इन पाँचों व्रतों का पूर्णरीति से पालन करते हैं और गृही अणुरूप से पालन करते हैं। जो मुनिराज हिंसा आदि पापों से सदा विरक्त रहते हैं तथा शरीर का मोह नहीं करते, उन्हें शीघ्र ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। जिन्होंने इन्द्रिय विषयक ज्ञान को त्याग दिया है तथा मन, वचन, काय को वश में कर लेने की जिनमें शक्ति है, वे ही महापुरुष मुनि कहलाने के अधिकारी होते हैं। जिन्होंने सर्व परिग्रहों का सर्वथा परित्याग कर दिया है, उन्हें ही मोक्षरूपी स्त्री स्वीकार करती है। शुभध्यान में निरत मुनिराज ईर्या, भाषा, एषणा, आदान विक्षेपण और उत्सर्ग—इन पाँचों समितियों का पालन करते हैं तथा उन्हीं के अनुसार चलने का नियम बना लेते हैं। जिस प्रकार सूर्य के उदय होते ही अन्धकार का सर्वथा विनाश हो जाता है, उसी प्रकार तपश्चरण के द्वारा अन्तरंग एवं बहिरंग दोनों प्रकार के कर्मों का समुदाय विनष्ट हो जाता है। पर बिना तपश्चरण किये कर्म

के समूह नष्ट नहीं होते। वर्षा के अभाव में जिस प्रकार खेती नहीं होती, उसी प्रकार बिना उत्तम तपश्चरण के कर्मों का विनाश होना सम्भव नहीं है। तपश्चरण ही कर्मरूपी धधकती हुई प्रबल अग्नि को शान्त कर देने के लिए जल के समान हैं और अशुभ कर्मरूपी विशाल पर्वत श्रेणी को ध्वस्त करने के लिए इन्द्र के वज्र के समान है। यह विषयरूपी सर्पों को वश में करने के लिए मन्त्र के समान है, विघ्नरूपी हिरणों को रोकने के लिए जाल के समान और अन्धकार को विनष्ट करने के लिए सूर्य जैसी शक्ति रखता है।

तपश्चरण के प्रभाव से केवल मनुष्य ही नहीं; देव, भवनवासी देव, आदि सभी सेवक बन जाते हैं। सर्प, सिंह, अग्नि, शत्रु आदि के भय सर्वथा दूर हो जाते हैं। जिस प्रकार धान्य के बिना खेत, शृंगार के बिना सुन्दरी, कमलों के बिना सरोवर शोभित नहीं होते, उसी प्रकार तपश्चरण के अभाव में मनुष्य शोभा नहीं देता। इसी तपश्चरण के द्वारा मुनिराज दो-तीन भव में ही कर्म समुदाय को नष्टकर मोक्ष-सुख प्राप्त कर लेते हैं। इसका प्रभाव इतना प्रबल है कि अरहन्त देव, सबको धर्मोपदेश देनेवाले तथा देव, इन्द्र, नागेन्द्र आदि के पूज्य होते हैं। वे भगवान, उनके नाम को स्मरण करनेवले तथा जैनधर्म के अनुसार पुण्य संचय करनेवाले सत्पुरुषों को संसार महासागर से शीघ्र पार कर देने में निमित्त हैं।

जो क्षुधा, पिपासा, आदि अठारह दोषों से रहित हो, जो राग-द्वेष से रहित हो; समवसरण का स्वामी तथा संसार सागर से पार करने के लिए जहाज के तुल्य हो, उसे देव कहते हैं। बुद्धिमान लोग ऐसे अरहन्त देव के चरणों की निरन्तर उपासना किया करते हैं और उनके पाप क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं। भगवान जिनेन्द्रदेव की पूजा रोग, पाप से मुक्त और स्वर्ग-मोक्ष प्रदान करनेवाली है।

जो लोग ऐसे भगवान की पूजा करते हैं, उनके घर नृत्य करने के लिए इन्द्र भी बाध्य हैं। भगवान के चरणकमलों की सेवा से सुन्दर सन्तान, हावभाव सम्पन्न सुन्दर स्त्रियाँ तथा समग्र भूमण्डल का राज्य प्राप्त होता है। भगवान की पूजा शत्रु-विनाशक और शत्रु-संहारक है। यह कामधेनु के सदृश इच्छाओं की पूर्ति करती हैं। जो भव्य पुरुष भगवान की पूजा करते हैं, उनकी सुमेरुपर्वत के मस्तक पर देवों और इन्द्रों द्वारा पूजा होती है। परमात्मा की स्तुति से पुण्य समुदाय की कितनी वृद्धि होती है, इसका वर्णन करना सर्वथा कठिन है।

जो लोग भगवान की निन्दा करते हैं, वे क्रूर जीवों से भरे हुए इस संसाररूपी वन में दु:खी होकर यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेतादि की उपासना करते रहते हैं। मिथ्याचारी मनुष्य धन आदि की इच्छा से पीपल, कुंआ तथा कुल देवियों की पूजा करते हैं।

जो मुनिराज सम्यक्चारित्र से सुशोभित हैं और निज आत्मा तथा समस्त जीवों को तारने के लिए तत्पर रहते हैं, वे विद्वानों द्वारा गुरु माने जाते हैं। जिनसे मिथ्याज्ञान का विनाश हो एवं अधर्म का नाश और धर्म की अभिवृद्धि होती हो, वे ही गुरु भव्यजीवों द्वारा सेवा के अधिकारी हैं। माता, पिता, भाई, बन्धु किसी में भी सामर्थ्य नहीं कि इस भवरूपी संसार में पड़े हुए जीवों का उद्धार कर सकें। मिथ्याज्ञान से भरपूर पाखण्डी त्रिकाल में भी गुरु नहीं माने जा सकते। भला जो स्वयं मिथ्या शास्त्रों में आसक्त है, वह दूसरों का क्या उपकार कर सकता है ? जो भगवान जिनेन्द्रदेव की दिव्यवाणी का श्रवण नहीं करते, वे देव-अदेव, धर्म-अधर्म, गुरु-कुगुरु, हित-अहित का कुछ भी ज्ञान नहीं रखते हैं। जो लोग

जैनधर्म को भी अन्य धर्मों की भाँति समझते हैं, वे वस्तुत: लोहे को मणि और अन्धकार को प्रकाश समझते हैं। जिसने भगवान की दिव्यवाणी नहीं सुनी, उसका जन्म ही व्यर्थ है। जिसने जिनवाणी का उच्चारण नहीं किया, उसकी जीभ व्यर्थ ही बनायी गयी। जिसमें तीनों लोकों की स्थिति, सप्ततत्त्वों, नव पदार्थों, पाँच महाव्रतों का वर्णन हो तथा धर्म, अधर्म का स्वरूप बतलाया गया हो, वही विद्वानों द्वारा कही गयी जिनवाणी है। सूर्य के अभाव में जिस प्रकार संसार के पदार्थ दिखायी नहीं देते, ठीक उसी प्रकार जिनवाणी के बिना ज्ञान होना संभव नहीं है। देव, शास्त्र और गुरु का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग का पाथेय और नरकादि मार्गों का अवरोधक है। अत: बुद्धिमान लोग सम्यग्दर्शन का ही ग्रहण करते हैं। यह अज्ञानतम का विनाशक और मिथ्याचार का क्षय करनेवाला है। इसके बिना व्रत शोभायमान नहीं होते।

जिस प्रकार देवों में इन्द्र, मनुष्यों में चक्रवर्ती और समुद्रों में क्षीरसागर श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त व्रतों में सम्यग्दर्शन ही श्रेष्ठ है। दरिद्र और भूखा सम्यग्दृष्टि को धनी ही समझना चाहिए और उसके विपरीत सम्यग्दर्शन हीन धनी को निर्धन। इसी के प्रभाव से मनुष्यों को सांसारिक सम्पदाएँ प्राप्त होती हैं और रोग-शोकादि सब कष्ट दूर होते हैं। सम्यग्दृष्टि को भोगोपभोग की सामग्रियाँ मिलती हैं तथा सूर्य के समान उनकी कीर्ति प्रकाशित होती है। वे अपने रूप से कामदेव को भी परास्त करते हैं और उन्हें इन्द्र, चक्रवर्ती आदि अनेक पद प्राप्त होते हैं। उन्हें देवांगनाओं जैसे सुन्दरियाँ प्राप्त होती हैं और चारों प्रकार के देव उनकी सेवा करते हैं।

सम्यग्दर्शन का ही प्रभाव है कि मनुष्य कर्मरूपी शत्रुओं को नष्ट कर तीनों भवों को पार कर जाता है।

जिस स्थान पर देव-शास्त्र और गुरु की निन्दा होती हो, उसे मिथ्यादर्शन कहते हैं, इस दर्शन के प्रभुत्व से मनुष्य को नरकगामी होना पड़ता है। मिथ्यादर्शन से जीव टेढ़े, कुबड़े, नकटे, गूंगे तथा बहरे होते हैं। उन्हें दरिद्री होना पड़ता है और उन्हें स्त्री भी कुरूपा मिलती है। वे दूसरों के सेवक होते हैं और उनकी अपकीर्ति संसार भर में फैलती है। उन्हें भूत, प्रेत, यक्ष, राक्षस आदि नीचे व्यन्तर भवों में जाना पड़ता है अथवा वे कौआ, बिल्ली, सूकर आदि नीच और क्रूर होते हैं तथा एकेन्द्रिय और निगोद में उत्पन्न होते हैं।

जो जिनालय का निर्माण कराता है, वह संसार में पूज्य और उत्तम होता है, उसकी कीर्ति संसार में फैलती है। कृषि कुएँ से अधिक जल निकालना, रथ गाड़ी बनाना, घर बनाना, कुँआ बनाना आदि हिंसा प्रधान कार्य नीच मनुष्य ही करते हैं। परन्तु जो प्राणियों की हिंसा के दोष से जिनालय बनाने तथा भगवान की पूजा आदि में निषेध करते हैं, वे मूर्ख हैं और मृत्यु के पश्चात् निगोद में निवास करते हैं।

जिस प्रकार विष की छोटी बूँद से महासागर दूषित नहीं हो पाता, उसी प्रकार पुण्य कार्य में दोष नहीं लगता। परन्तु खेती आदि हिंसा के कार्य में दोष अवश्य लगता है, जैसे घड़े भर दूध को थोड़ी सी कांजी नष्ट कर देती है। उस मनुष्य के समग्र पाप नष्ट हो जाते हैं, जो मन-वचन की शुद्धता से पात्रों को दान देता है। उसके परिणाम शान्त हो जाते हैं और आगम तथा चारित्र की वृद्धि होती है। वह कल्याण, पुण्य और ज्ञान विनय की प्राप्ति करता है।

पात्रों को दान देने से रत्नत्रयादि गुणों में प्रेम और लक्ष्मी की सिद्धि होती है। यहाँ तक कि आत्मकल्याण और अनुक्रम से मोक्ष तक की प्राप्ति होती है। दान देने से—ज्ञान, कीर्ति, सौभाग्य, बल, आयु, कान्ति आदि समस्त गुणों की अभिवृद्धि होती है तथा उत्तम सन्तान और सुन्दरी स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं। जैसे गाय आदि दूध देनेवाले पशुओं को घास खिलाने से दूध उत्पन्न होता है, उसी प्रकार सुपात्रों के दान से चक्रवर्ती, इन्द्र, नागेन्द्र आदि के सुख उपलब्ध होते हैं। जो दान दयापूर्वक दीन और दुखियों को दिया जाता है, उसे भी जिनेन्द्र भगवान ने प्रशंसनीय कहा है। उससे मनुष्य पर्याय प्राप्त होती है। परन्तु मित्र राजा, भाट, दास, ज्योतिषी, वैद्य आदि को उनके कार्य के बदले जो दान दिया जाता है, उससे पुण्य नहीं होता। रोगियों को सदा औषधि दान देना चाहिए। औषधि के दान से सुवर्ण जैसे सुन्दर शरीर की प्राप्ति होती है। वे कामदेव से सुन्दर और सदा निरोग रहते हैं। इसी तरह जो मनुष्य एकेन्द्रिय आदि जीवों को अभयदान देता है, उसकी सेवा में उत्तम स्त्रियाँ रत रहती हैं। इस अभयदान के प्रभाव से गहन वन में, पर्वतों पर किसी भी हिंसक जानवर का भय नहीं रहता।

जो जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहा गया हो, धर्म की शिक्षा देता हो तथा जिसमें अहिंसा आदि का वर्णन हो, वह आर्हंत मत में शास्त्र कहलाता है। जो लोग शास्त्रों को लिखा-लिखाकर दान देते हैं, वे शास्त्र पारंगत होते हैं। परन्तु अनेक प्रकार के अनर्थ में रत मनुष्य शस्त्र, लोहा, सोना, चाँदी, गौ, हाथी, घोड़ा आदि का दान करते हैं, वे नरकगामी होते हैं। शास्त्रदान से जीव इन्द्र होता है। वे परमदेव के कल्याणकों में लीन रहते हैं, अनेक देवियाँ उनकी सेवा में

तत्पर रहती हैं और उनकी आयु होती है, सागरों की। वहाँ से वे मनुष्य भव में आकर स्त्रियों के भोग भोगते हैं, बड़े धनी और यशस्वी बनते हैं। ये सदा जिन भगवान की सेवा में लीन रहते हैं, मधुर भाषी होते हैं और दया आदि अनेक व्रतों को धारण करते हैं। अन्त में संसार के विषयों से विरक्त होकर जिन-दीक्षा ग्रहण कर शास्त्राभ्यास में लीन होते हैं। उनकी प्रवृत्ति सदा परोपकार में रहती है। पुन: वे घोर तपश्चरण के द्वारा केवलज्ञान प्राप्त कर भव्य जीवों को धर्मोपदेश करते हैं एवं चौदहवें गुणस्थान में पहुँचकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

उपरोक्त व्रतों के तुल्य व्रत के पालन करनेवाले श्रावकों को चाहिए कि वे रात्रि-भोजन का सर्वथा त्याग कर दें। रात्रि भोजन हिंसा का एक अंग है, पाप की वृद्धि करनेवाला तथा उत्तम गतियों को प्राप्त करने में प्रधान बाधक है। रात्रि में जीवों की अधिक वृद्धि हो जाती है। भोजन में इतने छोटे-छोटे कीड़े मिल जाते हैं, जो दिखायी नहीं देते। इसलिए कौन ऐसा धार्मिक पुरुष होगा जो रात्रि के समय भोजन करेगा। रात्रि के समय भोजन करने के पाप स्वरूप जीव को सिंह, उल्लू, बिल्ली, काक, कुत्ते, गृद्ध और माँसभक्षी आदि नीची योनियों में जाना पड़ता है। जो शास्त्र पारदर्शी व्यक्ति रात्रिभोजन का परित्याग कर देते हैं, वे १५ दिन उपवास करने का फल प्राप्त करते हैं। ऐसे ही मुनि और श्रावकों के भेद से कहे गये उपरोक्त धर्मों का जो निरन्तर पालन करते हैं, वे ऐहिक, पारलौकिक और अन्त में मोक्षप्राप्ति के अधिकारी अवश्य होते हैं। इस प्रकार भगवान महावीरस्वामी के सदुपदेश सुनकर श्रेणिक आदि अनेक राजाओं और मनुष्यों ने व्रत धारण किये और दीक्षा ग्रहण की।

❁

पंचम अधिकार

इसके पश्चात् भगवान गौतमस्वामी भव्य जीवों को आत्म-ज्ञान प्रदान करनेवाली सरस्वती को प्रकट करने लगे। उनकी दिव्यध्वनि में प्रकट हुआ कि भगवान जिनेन्द्रदेव ने जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये सप्त तत्त्व निरूपित किये हैं। जो अन्तरंग और बहिरंग प्राणों से पूर्वभव में जीवित रहेगा, वह जीव है। यह अनादि काल से स्वयंसिद्ध है। यह जीव भव्य और अभव्य अथवा संसारी और सिद्ध भेद से अथवा सेनी-असेनी भेद से दो प्रकार का होता है। त्रस और स्थावर भेद से दो प्रकार का होता है। उनमें पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक—ये पंच स्थावरों के भेद हैं तथा दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय ये चार त्रसों के भेद हैं। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण ये पंचेन्द्रियाँ हैं एवं स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द उक्त इन्द्रियों के विषय हैं। शंखावर्त, पद्‌मपत्र और वंशपत्र ये तीन प्रकार की योनियाँ होती हैं। शंखावर्त योनि में गर्भधारण की शक्ति नहीं होती। पद्‌मपत्र योनि से तीर्थंकर चक्रवर्ती नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र आदि महापुरुष और साधारण पुरुष उत्पन्न होते हैं, किन्तु वंशपत्र से साधारण मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं। जीवों के जन्म तीन प्रकार से होते हैं—सम्मूर्च्छन, गर्भ और उपपाद एवं सचित्त, अचित्त, सचिताचित, शीत, उष्ण, शीतोष्ण संवृत, निवृत, संवृत-निवृत ये नव प्रकार की योनियाँ हैं। उत्पन्न होते ही जिन पर जरा आती है, वे जरायुज और जिन पर जरा नहीं आती वे अण्डज और पोत ये गर्भ से उत्पन्न होते हैं। इतर सब जीव सम्मूर्च्छन उत्पन्न होते हैं। योनियों के ये नव भेद जिनागम

में संक्षेप से बतलाये गये हैं, अन्यथा यदि विस्तारपूर्वक कहे जाएँ तो चौरासी लाख होते हैं। नित्य निगोद, इतर निगोद, पृथ्वीकादिक, जलकादिक, अग्निकादिक, वायुकादिक इनकी सात-सात लाख योनियाँ हैं। इन योनियों में जीव सदा परिभ्रमण किया करता है।

वनस्पति जीवों की दस लाख योनियाँ हैं। दो इन्द्रिय, तीन्द्रिय, चौइन्द्रिय की दो-दो लाख योनियाँ हैं, जिनमें ये जीव जन्म-मृत्यु के दु:ख भोगा करती हैं। चार लाख योनियाँ नारकियों की हैं जो शीतोष्ण के दु:ख भोगती हैं। वे शारीरिक, मानसिक और असुर कुमार तथा देवों के दिए हुए पाँच प्रकार के दु:ख भोगती हैं। चार लाख योनियाँ तिर्यंचों की हैं, वे मारन, छेदन आदि के कष्ट भोगती हैं। चौदह लाख योनियाँ मनुष्यों की हैं, वे इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग के कष्ट झेलती हैं। इनके अतिरिक्त देवों की चार लाख योनियाँ हैं, वे भी मानसिक दु:ख भोगने के लिए बाध्य हैं। अर्थात् हे राजन्! संसार में कहीं भी सुख नहीं हैं। गर्भ से उत्पन्न होनेवाले स्त्री, पुरुष, स्त्रीलिंग, पुलिंग और नपुंसक लिंग के धारण करनेवाले होते हैं। परन्तु देव दो लिंगों को अर्थात् स्त्रीलिंग और पुलिंग को ही धारण करनेवाले होते हैं। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, चौइन्द्रिय सम्मूर्छन, पंचेन्द्रिय तथा नारकी ये सब नपुंसक ही होते हैं।

एकेन्द्रिय आदि के अनेक संस्थान होते हैं, परन्तु नारकियों का हुण्डक संस्थान ही होता है।

देव और भोगभूमियों का समचतुरस्र संस्थान होता है, पर मनुष्य और तिर्यंचों के छहों संस्थान होते हैं। देव और नारकियों की उत्कृष्ट स्थिति (सबसे अधिक आयु) तीस सागर की होती है, व्यन्तर ज्योतिषियों की एक पल्य तथा भवनवासियों की एक सागर

की। वनस्पतियों की स्थिति दस हजार वर्ष और सूक्ष्म वनस्पतियों की अन्तर्मुहूर्त है। पृथ्वीकादिक जीवों की बाईस हजार वर्ष, जलकादिक जीवों की सात हजार वर्ष और अग्निकादिक जीवों की तीन दिन की उत्कृष्ट स्थिति है। जिनागम में द्वीन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट स्थिति बारह वर्ष और तीन्द्रिय की उनचास दिन की बतायी गयी है। चतुरेन्द्रिय की छह मास की और पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति तीन पल्य की है एवं इन्हीं की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है।

जिनागम में धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, जीव और काल ये छह द्रव्य बतलाये गये हैं। इनमें से धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गलद्रव्य अजीव भी है और काय भी है। पुद्गल द्रव्य रूपी है और बाकी सबके सब अरूपी हैं और द्रव्य नित्य हैं। जीव और पुद्गल क्रियाशील है और चार द्रव्य किया रहित है। धर्म, अधर्म और एक जीव के असंख्यात प्रदेश हैं। पुद्गलों में संख्यात, असंख्यात और अनन्त तीनों प्रकार के प्रदेश हैं। आकाश के अनन्त प्रदेश हैं और काल का एक-एक प्रदेश है। दीपक के प्रकाश की भाँति जीव की भी संकोच होने पर विस्तृत होने की शक्ति है। अतएव वह छोटे-बड़े शरीर में पहुँचकर शरीर का आकार धरण कर लेता है। शरीर, मन, वचन और श्वासोच्छ्वास के द्वारा पुद्गल जीवों का उपकार करता है। जिस प्रकार मत्स्य के तैरने के लिए जल सहायक होता है तथा पथिक को रोकने के लिए छाया सहायक होती है, उसी प्रकार जीव के चलने में धर्मद्रव्य सहायक होता है और अधर्म ठहरने में सहायक होता है। द्रव्य परिवर्तन के कारण को काल कहते हैं। वह क्रिया परिणमन, परत्वापरत्व से जाना जाता है। आकाशद्रव्य सब द्रव्यों को अवकाश देता है।

द्रव्य का लक्षण सत् है। जो प्रतिक्षण उत्पन्न होता हो, ज्यों का त्यों बना रहता हो, वह सत् है। सर्वज्ञदेव ने ऐसा बतलाया है कि जिसमें गुण-पर्याय हों अथवा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य हों, उसे द्रव्य कहते हैं। वचन और शरीर की क्रिया योग है। वह शुभ-अशुभ दो प्रकार का होता है। मन, वचन, काय की शुभक्रिया पुण्य है और अशुभक्रिया पाप है। मिथ्यात्व, अविरत योग और कषायों से आनेवाले कर्म को आस्रव कहते हैं। इनमें मिथ्यात्व पाँच, अविरत बारह, योग पन्द्रह प्रकार के और कषाय के पच्चीस भेद होते हैं। मिथ्यात्व के पाँच भेद एकन्त, विपरीत विनय, संशय और अज्ञान हैं। छह प्रकार के जीवों की रक्षा न करना, पंचेन्द्रिय तथा मन को वश में न करना आदि बारहभेद श्री सर्वज्ञदेव ने बतलाये हैं। सत्य मनोयोग, असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग, अनुभभय मनोयोग, ये चार मनोयोग के भेद हैं। कामयोग के सात भेद क्रम से औदारिक, औदारिक-मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिक-मिश्र, आहारक, आहारक-मिश्र और कार्माण हैं। कषाय वेदनीय और नौ कषाय वेदनीय ये कषाय के दो भेद हैं। इनमें अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ ये सोलह प्रकार के भेद कषाय वेदनीय के हैं और हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा पुलिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसक लिंग, ये नौ भेद नौ कषाय वेदनीय के हैं। इस प्रकार कषाय के कुल पच्चीस भेद होते हैं।

जिस प्रकार समुद्र में पड़ी हुई नौका में छिद्र हो जाने से उसमें पानी भर जाता है, उसी प्रकार मिथ्यात्व, अविरत आदि के द्वारा

जीवों के कर्मों का आस्रव होता रहता है। यह सम्बन्ध अनादि काल से चला आ रहा है। कर्मों के उदय से ही जीवों के राग-द्वेषरूप के भाव उत्पन्न होते हैं। राग-द्वेषरूप परिमाणों से अनन्त पुद्गल आकर इस जीव के साथ सम्मिलित हो जाते हैं। पुन: नये कर्मों का बन्ध आरम्भ होता है। इस प्रकार कर्म और आत्मा का सम्बन्ध अनादि काल से है। जिनागम में प्रकृति, स्थिति, अनुमान और प्रदेश ये बन्ध के चार भेद बतलाये गये हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये प्रकृति के आठ भेद हैं। प्रतिमा के ऊपर पड़ी हुई धूल जिस प्रकार प्रतिमा को ढ़ँक लेती है, उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म ज्ञान को ढ़ँक लेती है। मति ज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधि ज्ञानावरण, मन:पर्यय ज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण ये पाँच भेद ज्ञानावरण के होते हैं। आत्मा के दर्शनगुण को रोकनेवाले को दर्शनावरण कहते हैं। वह नव प्रकार का होता है—चक्षुर्दर्शनावरण, अचर्क्षुदर्शनावरण, अवधि दर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला स्त्यानगृद्धि। दु:ख और सुख को अनुभव करानेवाले कर्म को वेदनीय कहते हैं। वह दो प्रकार का होता है—साता वेदनीय और असाता वेदनीय। मोहनीय कर्म का स्वरूप मद्य व धतूरा की तरह होता है। वह आत्मा को मोहित कर लेता है। उसके अठाईस भेद होते हैं—अनन्तानुबन्धी, क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्याना-वरण, क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण, क्रोध, मान, माया, लोभ, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री, पुलिंग, नपुसंक लिंग, मिथ्यात्व सम्यक्मिथ्यात्व सम्यक्प्रकृति मिथ्यात्व। जिस प्रकार सांकल में

बँधा हुआ मनुष्य एक स्थान पर स्थिर रहता है, उसी प्रकार इस जीव को मनुष्य तिर्यंच आदि के शरीर में रोक कर रखे, उसे आयुकर्म कहते हैं। आयुकर्म के उदय से ही मनुष्यादि भव धारण करना पड़ता है। यह कर्म चार प्रकार का होता है—मनुष्यायु, तिर्यंचायु, देवायु और नरकायु। जो अनेक प्रकार के शरीर की रचना करे, उसे नामकर्म कहते हैं। उसके तिरानवें भेद हैं—

देव, मनुष्य, तिर्यंच, नरक ये चार गतियाँ; एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय ये पाँच जातियाँ; औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस, कार्मण, पाँचबंधन, पंच संघात, समचतुरस्त्र, न्यग्रोधपरिमण्डल, स्वास्तिक, कुब्जक, वामन, हुंडक, ये छह संस्थान; वज्रवृषभ नाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच कीलक, असप्राप्तासृपाटिक ये छह संहनन; स्पर्श आठ, रस पाँच, गन्ध दो, वर्ण पाँच; नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देवगत्यानुपूर्वी अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्यात, उच्छ्वास विहायोगति दो, प्रत्येक साधारण, त्रस, स्थावर, सुभग, दुर्भग, दुस्वर, उस्वर, शुभ, अशुभ, सूक्ष्म, स्थूल, पर्याप्ति, अपर्याप्ति स्थिर, अस्थिर आदेय, अनादेय, यश:कीर्ति अयश कीर्ति, तीर्थंकर। जिस प्रकार कुम्हार छोटे-बड़े हर प्रकार के बर्तन तैयार करता है, उसी प्रकार ऊँच-नीच गोत्रों में जो उत्पन्न करे, उसे गोत्रकर्म कहते हैं। उसके ऊँच गोत्र और नीच गोत्र दो भेद होते हैं। दान आदि लब्धियों में जो विघ्न उत्पादन करता है, वह अन्तराय है। उसके पाँच भेद बतलाये गये हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय। विद्वानों ने ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागर की बतलायी है और आयुकर्म की

उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागर की। किन्तु इनकी जघन्य स्थिति वेदनीय की बारह मुहूर्त नाम और गोत्र की आठ और शेष कर्मों की अन्तर्मुहूर्त है। यह जीव शुभ परिणामों से पुण्य और अशुभ परिणामों से पाप संचय करता है। शुभ आयु, शुभ नाम, शुभ गोत्र और सातावेदनीय पुण्य है और अशुभ आयु, अशुभ नाम, अशुभ गोत्र, असाता वेदनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय पाप हैं। पाप प्रकृतियों का परिपाक विष के तुल्य होता है और पुण्य प्रकृतियों का अमृत के समान। ज्ञान के विरुद्ध कर्म करने से ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मों का बन्ध होता है। जीवों पर दया करने, दान देने, रागपूर्वक संयम पालन करके नम्रता और क्षमा धारण करने से साता वेदनीय कर्म का बन्ध होता है। दुख, शोक, वध, रोना आदि ये कर्म स्वयं करने या दूसरों से कराने से असाता-वेदनीय कर्म का आस्रव होता है। भगवान की निन्दा, शास्त्र की निन्दा, तपश्चरण की निन्दा, गुरु की निन्दा, धर्म की निन्दा आदि से दर्शनमोहनीय कर्म का बन्ध होता है। कषायों के उदय से तीव्र परिणाम होते हैं और उसके सकल-विकल दोनों प्रकार के चरित्र-मोहनीय का बन्ध होता है। रौद्रभव धारण करनेवाला, पापी, लोभी, शीलव्रत से रहित मिथ्यादृष्टि नरकायु का बन्ध करता है और शीलरहित जिनमार्ग का विरोधी पापाचारी जीव तिर्यंच आयु का बन्ध करता है। परन्तु जो मध्यम गुण धारण करनेवाला, दानी और मन्दकषायी है, वह मनुष्य आयु का बन्ध कर लेता है। देशव्रती, महाव्रती, अकाम निर्जरा करनेवाला सम्यग्दृष्टि जीव देवायु का बन्ध करता है। कुटिल मायाचारी जीव अशुभ नामकर्म का बन्ध करता है और इसके विपरीत मन, वचन, काय से शुद्ध जीव शुभ नामकर्म का बन्ध करता है। दुर्भाग्य को प्रकट करने से दूसरों की निन्दा करने

से नीच गोत्र का बन्ध और अपनी निन्दा और दूसरे की प्रशंसा करने से उच्च गोत्र का बन्ध होता है। जो भगवान अरहन्तदेव की पूजा से विमुख हिंसा आदि में रत रहता है, वह अन्तराय कर्म का बन्ध करता है, उसे इष्ट पदार्थों की प्राप्ति नहीं होती। गुप्ति, समिति धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषह, जप और चारित्र से आस्रव छूटकर महासंवर होता है। यह आत्मा संवर होने से अपने लक्ष्य (मोक्ष) पर पहुँच जाता है। बारह प्रकार के तपश्चरण; धर्मरूपी उत्तम बल, और रत्न भयरूपी अग्नि से यह जीव कर्मों की निर्जरा करता है। निर्जरा के दो भेद हैं—सविपाक अविपाक। तप और ध्वनि के द्वारा बिना फल दिये ही जो कर्म नष्ट हो जाते हैं, उसे सविपाक निर्जरा कहते हैं और अविपाक निर्जरा वह है जो कर्मों के झड़ जाने से होती है। समस्त कर्म जब नष्ट हो जाते हैं, तब मोक्ष मिलता है। मुक्त होने पर यह जीव ऊपर को गमन करता है। यह धर्मास्तिकाय अर्थात् लोकाकाश के अन्त तक जाता है और आगे निमित्तरूप से धर्मास्तिकाय न होने से और उपादानगत योग्यता लोकाग्र तक ही गमन करने की होने से वहीं रुक जाता है।

(यहाँ ध्यान देनेयोग्य तथ्य यह है कि कर्म कुछ करता नहीं है, किन्तु मात्र निमित्त होता है, इसी तथ्य का ज्ञान कराने के लिए करणानुयोग की कथनशैली में कर्तापने की भाषा प्रयोग की जाती है।)

इस प्रकार भगवान गौतमस्वामी की दिव्यवाणी द्वारा सप्ततत्त्वों का स्वरूप सुनकर महाराज श्रेणिक प्रार्थना करने लगे। वे कहने लगे—प्रभो! आप सन्देहरूपी अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य के तुल्य हैं। मैं आपके श्रीमुख से काल निर्णय, भोगभूमि का

स्वरूप, कुलकरों की स्थिति, तीर्थंकरों की उत्पत्ति, उनके उत्पन्न होने के मध्य का समय, शरीर की ऊँचाई चिह्न, जन्मनगर, उनके माता-पिताओं के नाम, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, रुद्र, नारद, कामदेव, आदि महापुरुषों के नाम नरक-स्वर्गों में नारकी और देवों की स्थिति और उनकी ऊँचाई लेश्या आदि बातें सुनने की आशा रखता हूँ। कृपा कर इन सब बातों को बतलाइये।

प्रत्युत्तर में भगवान श्री गौतमस्वामी कहने लगे—तुम मन को स्थिर कर सुनो। ये विषय संसार को सुख प्रदान करनेवाले हैं।

बीस कोड़ाकोड़ी सागर का एक कल्पकाल होता है, उसमें दस-दस कोड़ाकोड़ी सागर के अवसर्पिणी काल और उत्सर्पिणी काल होते हैं। इन दोनों कालों में प्रत्येक के छह भाग होते हैं— प्रथम सुषमा सुषमा, द्वितीय सुषमा, तृतीय सुषमा दुषमा, चतुर्थ दुषमा सुषमा, पंचम दुषमा और षष्टम दुषमा दुषमा होते हैं। उत्सर्पिणी के काल ठीक इसके विपरीत हैं। इनमें प्रथम काल चार कोड़ाकोड़ी सागर का है। द्वितीय तीन कोड़ाकोड़ी, तृतीय दो कोड़ाकोड़ी, और चतुर्थ व्यालिस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर का है। पंचम इक्कीस हजार वर्ष का और षष्टम भी इक्कीस हजार वर्ष का होता है, ऐसा जिनागम जाननेवाले आचार्य कहते हैं। उपरोक्त पूर्व के तीन कालों में भोगोपभोग की सामक्रियाँ कल्पवृक्षों से प्राप्त होती हैं, अतः उक्त तीनों कालों को भोगभूमि कहते हैं। प्रथम काल में जीवों की उत्कृष्ट आयु तीन पल्य, दूसरे में दो पल्य और तीसरे में एक पल्य की होती है। इसे भी उत्तम, मध्यम, जघन्य भोगभूमि के अनुरूप ही समझना चाहिए। पूर्व काल के आरम्भ में वहाँ के मनुष्य छह हजार धनुष, दूसरे काल के आरम्भ में चार

हजार धनुष और तीसरे के प्रारम्भ में दो हजार धनुष, ऊँचे होते हैं। भोगभूमि में उत्पन्न स्त्री–पुरुषों के शरीर का रंग पूर्व काल में सूर्य की प्रभा के समान, दूसरे काल में चन्द्रमा के और तीसरे काल में नीलवर्ण का होता है। वहाँ के स्त्री–पुरुष प्रथम काल में बेर के समान, द्वितीय काल में बहेरे के समान और तृतीय काल में आँबले के बराबर भोजन करते हैं। वहाँ तीनों कालों में वस्त्रांग, दीपांग, गृहांग, ज्योतिरंग, मालांग, भूषणांग, भोजनांग, भाजनांग, बाघांग और माघांग जाति के कल्पवृक्ष होते हैं। तीनों कालों के स्त्री–पुरुष सुलक्षणों से युक्त और क्रीड़ारत रहते हैं। उनकी तृप्ति कल्पवृक्ष सदा किया करते हैं। वहाँ के तिर्यंच भी तदनुरूप ही होते हैं। जो लोग उत्तम पात्रों को शुभदान देते हैं, वे भोगभूमि में उत्पन्न होकर इन्द्र के समान सुख भोगने के अधिकारी होते हैं। जिस समय अवसर्पिणी काल का अन्त हो रहा था, पल्य का आठवाँ भाग बाकी था और कल्पवृक्ष नष्ट हो रहे थे, उस समय कुलकर उत्पन्न हुए थे। उनके नाम क्रम से १४ प्रतिश्रुति, सन्मति, क्षेमंकर, क्षेमंधर, सीमंकर, सीमंधर, विमलवाहन चक्षुष्मान, यशस्वान, अभिचन्द्र, चन्द्राभ, मरुदेव, प्रसेनजित और नाभिराय थे। इनमें से सुख प्रदान करनेवाले नाभिराय की आयु एक करोड़ वर्ष थी और उन्होंने उत्पन्न होने के समय ही नाभि–काटने की विधि बतायी थी। इस प्रकार सभी कुलकर अपने–अपने नाम के अनुसार गुण धारण करनेवाले थे। वे एक–एक पुत्र उत्पन्न कर तथा लोगों को सद्बुद्धि दे स्वर्ग सिधार गये। पर तीसरे काल में जब तीन वर्ष साढ़े आठ महीने अधिक चौरासी लाख वर्ष बाकी थे, उस समय युग्मधर्म को दूर करनेवाले मति, श्रुत, अवधिज्ञान से सुशोभित त्रिलोक के स्वामी, तीनों लोकों के इन्द्रों द्वारा पूज्य श्री ऋषभदेव तीर्थंकर उत्पन्न हुए

थे। श्री ऋषभदेव अजितनाथ, सम्भवनाथ, अनिनन्दन; सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ; चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमीनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्द्धमान—ये चौबीस तीर्थंकर चौथे काल में उत्पन्न हुए। ये सभी तीर्थंकर कामदेव को परास्त करनेवाले और भव्यजीवों को संसार सागर से पार उतारनेवाले थे। जब तीसरे काल में तीन वर्ष साढ़े अठारह महीने बाकी रहे, तब श्री महावीरस्वामी मोक्ष गये थे। श्री ऋषभदेव की आयु चौरासी लाख पूर्व, श्री अजितनाथ की बहत्तर लाख पूर्व, श्री सम्भवनाथ की साठ लाख पूर्व, श्री अभिनन्दननाथ की पचास लाख पूर्व, श्री सुमतिनाथ की चालीस लाख पूर्व, श्री प्रभुनाथ की तीस लाख पूर्व, श्री सुपार्श्वनाथ की बीस लाख पूर्व, श्री चन्द्रप्रभ की दस लाख पूर्व, श्री पुष्पदन्त की दो लाख पूर्व, श्री शीतलनाथ की एक लाख पूर्व, श्री श्रेयांसनाथ की चौरासी लाख पूर्व, श्री वासुपूज्य की बहत्तर लाख वर्ष, श्री विमलनाथ की साठ लाख वर्ष, श्री अनन्तनाथ की तीस लाख वर्ष, श्री धर्मनाथ की दस लाख वर्ष, श्री शान्तिनाथ की एक लाख वर्ष, श्री कुंथुनाथ की पंचनावें हजार वर्ष, श्री अरनाथ की चौरासी हजार वर्ष, श्री मल्लिनाथ की पचपन हजार वर्ष, श्री मुनिसुव्रतनाथ की तीस हजार वर्ष, श्री नमिनाथ की दस हजार वर्ष, श्री नेमिनाथ की एक हजार वर्ष, श्री पार्श्वनाथ की सौ वर्ष और श्री वर्द्धमान की ७२ वर्ष की आयु थी।

श्री ऋषभदेव के मोक्ष जाने के पश्चात पचास लाख करोड़ सागर व्यतीत होने पर श्री अजितनाथ उत्पन्न हुए थे। उनके मोक्ष के पश्चात् तीस लाख करोड़ सागर बीत जाने पर श्री सम्भवनाथ

उत्पन्न हुए थे। इनके मोक्ष के बाद दस लाख करोड़ सागर बीतने पर अभिनन्दननाथ हुए। इनके मोक्ष जाने के पश्चात् नौ लाख करोड़ सागर व्यतीत होने पर श्री सुमतिनाथ उत्पन्न हुए थे। इनकी सिद्धि के नब्बे हजार करोड़ सागर व्यतीत होने के बाद पद्मप्रभ उत्पन्न हुए थे। इनके मोक्ष के नौ हजार करोड़ सागर बीतने पर श्री सुपार्श्वनाथ हुए थे। इनके पश्चात् नौ सौ करोड़ सागर बीतने पर श्री चन्द्रप्रभ हुए, पुन: नब्बे करोड़ सागर व्यतीत होने पर श्री पुष्पदन्त हुए थे। इसी प्रकार नौ करोड़ सागर बीत जाने पर श्री शीतलनाथ उत्पन्न हुए थे। इनके मोक्ष के बाद सौ सागर छयासठ लाख छब्बीस हजार वर्ष कम एक करोड़ सागर बीत जाने पर श्री श्रेयांसनाथ की उत्पत्ति हुई थी। इनके बाद चौसठ सागर बीत जाने पर श्री विमलनाथ हुए थे। इनके बाद नौ सागर व्यतीत होने पर श्री अनन्तनाथ हुए थे। श्री अनन्तनाथ के मोक्ष जाने के बाद चार सागर बीत जाने के बाद श्री धर्मनाथ हुए थे। इनके पश्चात् पौन पल्य कम तीन सागर व्यतीत होने पर श्री शांतिनाथ हुए थे। इनके पश्चात् आधा पल्य बीतने पर श्री कुंथुनाथ हुए थे। इनके पश्चात् एक हजार करोड़ वर्ष कर्म चौथाई पल्य व्यतीत होने पर श्री अरनाथ हुए थे। इनके पश्चात् एक हजार करोड़ दो हजार वर्ष बीतने पर श्री मल्लिनाथ और उनके मोक्ष के चौवन लाख वर्ष बीत जाने पर श्री मुनिसुव्रत हुए थे। ऐसे ही श्री मुनिसुव्रत के मोक्ष के पश्चात् छह लाख वर्ष बीत जाने पर श्री नमीनाथ हुए थे। इनके बाद पाँच लाख वर्ष व्यतीत होने पर श्री नेमिनाथ उत्पन्न हुए। इनके तिरासी हजार सात सौ वर्ष व्यतीत होने पर श्री पार्श्वनाथ अवतरित हुए थे और इनके ढ़ाई सौ वर्ष बीत जाने पर श्री वर्द्धमानस्वामी का आविर्भाव हुआ थी।

तीर्थंकरों के शरीर की क्रम से ऊँचाई पाँच सौ धनुष, चार सौ पचास धनुष, चार सौ धनुष, तीन सौ पचास धनुष, तीन सौ धनुष, दो सौ पचास धनुष, दो सौ धनुष, एक सौ पचास धनुष, सौ धनुष, नब्बे धनुष, अस्सी धनुष, सत्तर धनुष, साठ धनुष, पचास धनुष, चालीस धनुष, पैंतीस धनुष, तीस धनुष, पच्चीस धनुष, बीस धनुष, पन्द्रह धनुष, दस धनुष, नव हाथ और सात हाथ की थी।

चौबीस तीर्थंकरों में श्री पद्मप्रभ और वासुपूज्य का वर्ण लाल था, श्री नेमिनाथ और मुनिसुव्रत श्यामवर्ण के थे, सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ हरित वर्ण के तथा अन्य सोलह तीर्थंकरों का वर्ण तपाये हुए स्वर्ण के समान था। क्रम से—बैल, हाथी, घोड़ा, बन्दर, चकवा, कमल, स्वस्तिक, चन्द्रमा, मगर, वृक्ष, गैंड़ा, भैंसा, सूकर, सेही, वजू, हिरण, बकरा, मछली, कलश, कछवा, नील कमल, शंख, सर्प और सिंह ये इनके चिह्न हैं। अयोध्या, कौशाम्बी, काशी, चन्दपुर, काकंदी, भद्रपुर, सिंहपुर, चम्पापुर, कम्पिला, अयोध्याय, रत्नपुर, हस्तिनापुर मिथिला राजगृह मिथिला, सौरीपुर, वाराणसी, कुण्डपुर ये क्रम से चौबीस तीर्थंकरों की जन्मभूमियाँ हैं। श्री वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्द्धमान ये पाँच तीर्थंकर कुमार अवस्था में ही दीक्षित हुए थे, अर्थात् बालब्रह्मचारी थे। अन्यान्य तीर्थंकर राज्य करके दीक्षित हुए थे। तीन तीर्थंकर— श्री ऋषभदेव, वासुपूज्य और नेमिनाथ पद्मासन से मोक्ष गये हैं, बाकी तीर्थंकर खड्गासन से। श्री ऋषभदेव चौदह दिनों तक योग निरोध कर, श्री वर्द्धमानस्वामी दो दिनों तक योग निरोधकर तथा अन्य बाईस तीर्थंकर एक-एक मास तक योग निरोध कर मोक्ष पधारे थे।

ऋषभदेव कैलाश से, श्री वासुपूज्य, चम्पापुर से श्री नेमिनाथ

गिरनार पर्वत से, श्री वर्द्धमानस्वामी पावापुर से तथा बाकी बीस तीर्थंकर सम्मेदशिखरजी से मोक्ष पधारे थे। क्रम से चौबीस तीर्थंकरों के पिताओं के नाम ये हैं—श्री नाभिराज, जितामित्र, जितारि, संवर राय, मेघप्रभ, धरणस्वामी, सुप्रतिष्ठ महासेन, सुग्रीव, दृढ़रथ, विष्णुराय, वसुपूज्य, कृतवर्मा, सिंहसेन, मोनुराय, विश्वसेन, सूर्यप्रभ, सुदर्शन, कुंभराय, सुमित्रनाथ, विजयरथ, समुद्रविजय, अश्वसेन, और सिद्धार्थ तथा माताओं के—श्री मरुदेवी, विजयादेवी, सुसेनादेवी, सिद्धार्थादेवी, सुलक्ष्मणा देवी, रामादेवी, सुनन्दा देवी, विमला देवी, विजयादेवी, श्यामादेवी, सुकीर्तिदेवी (सर्वयशादेवी), सुव्रतादेवी, ऐरादेवी, रमादेवी, सुमित्रादेवी, ब्राह्मणीदेवी, पद्मावती देवी, विजयादेवी, शिवादेवी, वामादेवी, त्रिशलादेवी नाम हैं। ये भी क्रम से मोक्ष प्राप्त करेंगी। ऐसा सर्वज्ञदेव ने कहा है।

भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, सुभूम, महापद्म, हरिषेण जय और ब्रह्मदत्त ये द्वादश चक्रवर्तियों के नाम हैं। ये भरतक्षेत्र के छह खण्डों के नौ निधि और चौदह रत्नों के स्वामी होते हैं। अनेक देव और राजा इनके चरण कमलों की सेवा में संलग्न रहते हैं। चक्रवर्तियों के पास रहनेवाली नौ निधियों के ये नाम हैं—पाण्डुक, माणव, काल, नैःसर्प, शंख, पिंगल, सर्वरत्न, महाकाल और पद्म तथा चक्र, तलवार काकिणी, दण्ड, छत्र, चर्म, पुरोहित, गृहपति, स्थपति, स्त्री, हाथी, मणि, सेनापति, घोड़ा ये चौदह रत्न हैं। उक्त बारह चक्रवर्तियों में सुभौम और ब्रह्मदत्त को नरक की प्राप्ति हुई थी, मधव और सनतकुमार स्वर्ग गये और अन्य आठ चक्रवर्तियों को मोक्ष की प्राप्ति हुई। इनके होने का समय इस प्रकार है—

प्रथम चक्रवर्ती श्री ऋषभदेव के समय में, दूसरा अजितनाथ के समय में, तीसरे और चौथे ये दो श्री धर्मनाथ और शान्तिनाथ के मध्यकाल में हुए थे। पाँचवें शान्तिनाथ थे और छठवें कुन्थुनाथ थे और सातवें अरनाथ थे। आठवाँ चक्रवर्ती अरनाथ और श्री मल्लिनाथ के मध्य में हुआ था, नौवाँ मल्लिनाथ और सुव्रत के मध्य में, दसवाँ सुव्रतनाथ और नेमिनाथ के मध्यकाल में ग्यारहवाँ नमिनाथ और नेमिनाथ के मध्य काल में तथा बारहवाँ चक्रवर्ती नेमिनाथ और श्री पार्श्वनाथ के मध्य काल में हुआ।

अश्वग्रीव, तारक, मेरु, निशुंभ, मधुकैटभ, बलि प्रहरण (प्रहलाद) रावण, जरासंघ ये नव नारायणों के नाम तथा त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ स्वयंभू पुरुषोत्तम प्रतापी नरसिंह पुण्डरीक, दत्त, लक्ष्मण, कृष्ण ये नव प्रतिनारायणों के नाम हैं। नारायण दोनों ही अर्ध चक्रवर्ती होते हैं। ये निदान से उत्पन्न होते हैं। अतएव नरकगामी होते हैं। विजय, अचल, सुधर्म, सुप्रभ, स्वयंप्रभ, आनन्दी, नन्दमित्र, रामचन्द्र और बलदेव ये नव बलभद्र हैं। इनकी उत्पत्ति निदान रहित होती है। अत: ये जिनदीक्षा धारण करते हैं, ये काम जीत और ऊर्ध्वगामी होकर स्वर्ग या मोक्ष प्राप्त करते हैं। भीमवली, जितशत्रु, रुद्र (महादेव), विश्वानल, सुप्रतिष्ठ, अचल, पुण्डरीक, अजितधर, जितनाभि, पीठ सात्यक ये ग्यारह रुद्र हैं। ये ग्यारहवें गुणस्थान में गिरकर नरक में ही गये हैं।

भीम, महाभीम, रुद्र, महारुद्र, काल, महाकाल, उर्मख, नरमुख, उन्मुख, ये नौ नाम नारकियों के हैं। इनकी आयु भी नारायणों की भाँति कही गयी है।

बाहुबली, अमित तेज, श्रीधर, शान्तभद्र, प्रसेनजित, चन्द्रवर्ण,

अग्निमुक्त, सनत्कुमार, वत्सराज, कनकप्रभ, मेषवर्ण, शान्तिवली, सुदर्शन (वसुदेव), प्रद्युम्न, नागकुमार, श्रीपाल, जम्बूस्वामी—ये चौबीस कामदेवों के नाम हैं। चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ प्रति नारायण, नौ बलभद्र ये तिरसठ श्लाका पुरुष तथा चौबीस कामदेव नौ नारद, चौबीस तीर्थंकरों की माताएँ, चौदह कुलकर, ग्यारह रुद्र ये एक सौ उनहत्तर महापुरुष कहलाते हैं। इनमें से कितने ही धर्म के प्रभाव से मोक्षगामी हुए और आगे होंगे। राजन्! यह बात सर्वथा सत्य है। श्रेणिक! यह तो दुषम-सुषम काल का स्वरूप बतलाया, अब दुषम काल का स्वरूप कहता हूँ, सुन। जब वर्द्धमानस्वामी मोक्ष पधारेंगे, उस समय, सुरेन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र सब उनका कल्याणोत्सव सम्पन्न करेंगे। उस काल में धर्म की प्रवृत्ति होती रहेगी। किन्तु जब केवली भगवान का धर्मोपदेश बन्द हो जाएगा, तब उस समय के मनुष्य दुष्ट और अधर्मरत होंगे। वे क्रूर तथा प्रजा को कष्ट देनेवाले होंगे। उनका हृदय सम्यग्दर्शन से शून्य होगा, हिंसारत होंगे, झूठ बोलेंगे एवं ब्रह्मचर्य से सर्वथारहित होंगे। वे क्रोधी, मायाचारी, परस्त्री लोलुपी, परोपकार से रहित और जैनधर्म के कट्टर विरोधी होंगे। माँस, मद्य, मधु का सेवन करनेवाले, विवादी, इष्टवियोगी, अनिष्ट संयोगी और कुबुद्धि धारण करनेवाले होंगे। उस समय उनके पाप कर्मों के उदय से सदा युद्ध होते रहेंगे। धान्य कम होगा और यज्ञों में गोवध करनेवाले पतित दूसरों को भी पतित करते रहेंगे। पंचम काल के आरम्भ की ऊँचाई सात हाथ की होगी, परन्तु घटते-घटते वह दो हाथ की रह जाएगी। आरम्भ के मनुष्यों की आयु एक सौ चौबीस वर्ष की होगी परन्तु वह भी अन्त में बीस वर्ष की हो जाएगी। दुषम-दुषम काल में शरीर की ऊँचाई एक हाथ की होगी और आयु केवल बारह वर्ष की रह

जाएगी, ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है। उस काल के लोग सर्पवृत्ति धारण कर अनेक कुकर्म करेंगे। वे सर्वथा धनहीन और स्थानहीन होंगे। उनमें आचरण की प्रवृत्ति नहीं रहेगी और पशुओं की तरह गुफाओं में रहकर जीवन व्यतीत करेंगे। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की प्रवृत्ति उनमें नहीं रहेगी। वे वनस्पति आदि खाकर जीवन-निर्वाह करेंगे। इसके अरिक्ति वे विवाह संस्कार से भी रहित होंगे। वे अंग से कुरूप होंगे। जिस तरह से कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा का प्रकाश हीन होता जाता है और शुक्ल पक्ष में उसकी अभिवृद्धि होती है; उसी प्रकार अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में मनुष्यों की आयु, शरीर, प्रभाव, ऐश्वर्य आदि में हीनाधिकता होती रहेगी।

राजन्! मुनि और श्रावकों के भेद से दो प्रकार का धर्म बतलाया गया है; इनमें मुनियों का धर्म मोक्ष प्राप्त करानेवाला है और श्रावकों के धर्म से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। दोनों का स्वरूप बतला चुके हैं। अब नरक-स्वर्ग का हाल बतलाते हैं। जीव को पापकर्म के उदय से नरक में जाना पड़ता है। वहाँ यह जीव नाना तरह के दु:ख भोगता है। अधोलोक में सात नरक हैं। उनके नाम ये हैं— धर्मा, वंशा, मेधा, अंजना, अरिष्टा, मघवी, माघवी। इनमें चौरासी लाख बिल क्रम से हैं—पहली पृथ्वी में तीस लाख, दूसरी में पच्चीस लाख, तीसरी में पन्द्रह लाख, चौथी में दस लाख, पाँचवीं में तीन लाख, छठी में पाँच कम एक लाख और सातवीं में पाँच। पहली में नारकी जीवों के जघन्य कापोतीलेश्या, दूसरी में मध्यम कापोतीलेश्या और तीसरी पृथ्वी के ऊपरी भाग में उत्कृष्ट कापोतीलेश्या है और उसी तीसरी के आधे भाग में जघन्य नील

लेश्या, चौथी के मध्यम नील लेश्या है। पाँचवीं पृथ्वी के अर्ध भाग में उत्कृष्ट और उसी पाँचवीं के निम्न भाग में जघन्य कृष्ण लेश्या है। छठी पृथ्वी के उद्भव में नारकी जीवों की मध्यम कृष्ण लेश्या और निम्नभाग में परम कृष्ण लेश्या है और सातवीं पृथ्वी के नारकियों की उत्कृष्ट कृष्ण लेश्या है। इन नारकियों की आयु इस प्रकार होती है—

प्रथम नरक में एक सागर की, दूसरी में तीन सागर की, तीसरे में सात सागर की, चौथे में दस सागर की, पाँचवें में सत्रह सागर की, छठवें में बाईस सागर की और सातवें नरक में तैतीस सागर की उत्कृष्ट आयु है। पहले में दस हजार वर्ष की जघन्य आयु, दूसरे में एक सागर, तीसरे में तीन सागर, चौथे में सात सागर, पाँचवें में दस सागर, छठवें में सत्रह सागर और सातवें में बाईस सागर की जघन्य आयु होती है। उनके शरीर की ऊँचाई सातवें नरक में पाँच सौ धनुष की होती है और क्रम से अन्य नरकों में आधी होती गयी है। प्रथम नरक में रहनेवाले नारकियों का अवधिज्ञान एक योजन तक रहता है, परन्तु क्रम से आधा घटता जाता है।

अब इसके आगे देवों का वर्णन करते हैं—भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी चार प्रकार के देव होते हैं। भवनवासियों के दस भेद, व्यन्तरों के आठ भेद, ज्योतिष्कों के पाँच भेद तथा कल्पवासियों के बारह भेद होते हैं। कल्पातीत देवों में किसी प्रकार का भेद नहीं है। असुरकुमार, नागकुमार, सुपणकुमार, द्वीपकुमार, अग्निकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, दिककुमार, विद्युत्कुमार और बातकुमार, ये भवनवासियों के भेद हैं। किन्नर, किं पुरुषमहोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच ये अष्ट व्यन्तरों

के भेद कहे जाते हैं। इनके अतिरिक्त सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह-नक्षत्र और प्रकीर्णक तारे ज्योतिषियों के पाँच भेद हैं। ये देव मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा करते हुए सदा भ्रमण करते रहते हैं। सौधर्म, ऐशान, सानतकुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव, कापिष्ट, शुक्र, महाशुक्र, सतार, सहस्त्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत ये सोलह स्वर्ग हैं। इनके ऊर्ध्व भाग में नव ग्रैवेयक हैं, नव अनदिश है और उनके ऊपर, विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि नाम के पाँच पंचोत्तर हैं। इस प्रकार ऊपर के कहे गये देवों में आयु, सुख, प्रभाव, कान्ति और अवधिज्ञान अधिक है। ग्रैवेयक से पूर्व के देव अर्थात् सोलहवें स्वर्ग तक के कल्पवासी कहलाते हैं और आगे के कल्पातीत। वैमानिकदेवों के विमानों की संख्या चौरासी लाख सतानवें हजार तेईस है। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवों की कृष्ण, नील, कापोत और जघन्य पीतलेश्या है। उनकी द्रव्यलेश्या और भाव भी यही है। असुरकुमार देवों की उत्कृष्ट आयु एक सागर, नागकुमार देवों की तीन पल्य, सुपर्णकुमारों की ढाई पल्य, द्वीपकुमारों की दो पल्य और बाकी भवनवासियों की डेढ़-डेढ़ पल्य की होती है। परन्तु इन्हीं देवों की जघन्य आयु दस हजार वर्ष की है। भवनवासी देवों के शरीर की ऊँचाई पच्चीस धनुष, व्यन्तरों की दस धनुष तथा ज्योतिषियों की सत्रह धनुष की होती है। प्रथम, दूसरे स्वर्ग में देवों की उत्कृष्ट आयु दो सागर, तीसरे-चौथे में सात सागर, पाँचवें-छठवें में दस सागर, सातवें-आठवें में चौदह सागर, नवें-दसवें में सोलह सागर, ग्यारहवें-बारहवें में अठारह सागर, तेरहवें-चौदहवें में बीस सागर और पन्द्रहवें-सोलहवें में बाईस सागर की होती है। फिर आगे एक सागर

आयु की वृद्धि होती गयी है। प्रथम और दूसरे स्वर्ग के देवों का अवधिज्ञान पहले नरक तक है। तीसरे-चौथे स्वर्ग के देवों का दूसरे नरक तक, पाँचवें, छठवें, सातवें, आठवें स्वर्ग के देवों का तीसरे नरक तक है। इसी प्रकार नववें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें स्वर्ग के देवों का अवधिज्ञान चौथे नरक तक तथा तेरहवें, चौदहवें, पन्द्रहवें, सोलहवें स्वर्ग के देवों का अवधिज्ञान पाँचवें नरक तक है। नवग्रैवेयक देवों का छठवें नरक तक और नौ अनुदिश के देवों का सातवें नरक तक अवधिज्ञान है। परन्तु अनुत्तर वैमानिक देवों का अवधिज्ञान ऊपर विमान के शिखर तक होता है।

पहले दो स्वर्गों के देव, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी, मनुष्यों की भाँति ही शरीर से भोग भोगते हैं। किन्तु तीसरे और चौथे स्वर्ग के देव, देवियों के स्पर्श मात्र से ही तृप्त हो जाते हैं। नववें से लेकर बारहवें तक के देव केवल देवियों के शब्द से तृप्ति लाभ करते हैं और तेरहवें से सोलहवें तक के देव संकल्प मात्र से तृप्ति का अनुभव करते हैं। इसी प्रकार सोलहवें स्वर्ग से ऊपर के ग्रैवेयक, अनुदिश, अनुत्तर विमानवासी देवों में काम की वासना नहीं होती। वे ब्रह्मचारी होते हैं। अत: वे सबसे सुखी रहते हैं। देवियों के उत्पन्न होने के उपपाद स्थान सौधर्म और ईशान स्वर्ग में हैं। देवियों के विमानों की संख्या पहले में छह लाख और दूसरे में चार लाख अर्थात् कुल दस लाख है। प्रथम स्वर्ग की देवियाँ दक्षिण में आरण स्वर्ग तक और ईशान में उत्पन्न हुई उत्तर दिशा की ओर अच्युत स्वर्ग तक जाती हैं। सौधर्म स्वर्ग में निवास करनेवाली देवियों की उत्कृष्ट आयु पाँच पल्य है, परन्तु बारहवें स्वर्ग तक दो-दो पल्य बढ़ती गयी है। इसके आगे सात पल्य की वृद्धि होती गयी है।

अर्थात् सोलहवें स्वर्ग की देवियों की आयु पचपन पल्य की होती है। इससे आगे देवियाँ नहीं होतीं।

राजन! संसार में जो इन्द्र, चक्रवर्ती के सुख उपलब्ध होते हैं; उसे पुण्य का प्रभाव समझना चाहिए। इसके विपरीत तिर्यंचों के दु:खों को पाप का फल। परन्तु राजन! **पाप और पुण्य दोनों ही दु:खदायक और बन्ध के कारण हैं। जो इन दोनों से रहित हो जाता है, वही वस्तुतः मोक्ष प्राप्त करता है।** अनेक देवों द्वारा नमस्कार किय जानेवाले गौतमस्वामी इस प्रकार धर्मोपदेश देकर मौन हो गये। इसके पश्चात् महाराज श्रेणिक उन्हें नमस्कार कर अपनी राजधानी को लौट आये।

महामुनि गौतम गणधर स्वामी ने अनेक देशों का विहार करते हुए स्थान-स्थान पर धर्म की अभिवृद्धि की। वे आयु के अन्त में ध्यान के द्वारा चौदहवें गुणस्थान में पहुँचे। उस समय वे कर्मों का नाश करने लगे। उन्होंने उपान्त्य समय में ही अपने शुक्लध्यानरूपी खड्ग से बहत्तर प्रकृतियों को नष्ट किया। इन्द्र द्वारा नमस्कार किये जानेवाले गौतमस्वामी ने अन्त समय में साता वेदनीय, आदेय,पर्याप्त, त्रस, वादर, मनुष्यायु, पंचेन्द्रिय जाति, मनुष्यगति, मनुष्य गत्यानुपूर्वी, उच्च गोत्र, सुभग यश:कीर्ति ये बारह प्रकृतियों को विनष्ट किया। तीर्थंकर प्रकृति तो उनमें थी ही नहीं। जिन्हें त्रैलोक्य के जीव नमस्कार करते हैं, जो अनन्त चतुष्टय से भूषित हैं, उन गौतमस्वामी ने समस्त प्रकृतियों को विनष्ट कर मोक्षरूपी स्त्री की प्राप्ति की। मुक्त होने के बाद वे सिद्ध अवस्था में जा पहुँचे। उनकी विशुद्ध आत्मा शरीर से कुछ कम आकार की, अष्टकर्मों से रहित तथा सम्यग्दर्शन आदि अष्ट गुणों से सुशोभित है। वे लोक शिखर पर

विराजमान चिदानन्दमय और सनातन ज्ञानस्वरूप हैं। सदा वे नित्य और उत्पाद–व्यय सहित हैं।

गौतमस्वामी के मोक्ष जाने के पश्चात् इन्द्रादिक देवों का आगमन हुआ। उन्होंने मायामयी शरीर धारण कर कर्पूर, चन्दनादि ईंधन के द्वारा उनके शरीर को भस्म किया, मोक्षकल्याणक का उत्सव सम्पन्न किया और माथे पर भस्म का लेपन किया। इस प्रकार वे बार–बार नमस्कार कर अपने–अपने स्थान को चले गये।

इस ओर गौतमस्वामी के अग्निभूत और वायुभूति दोनों भाई पाँच सौ ब्राह्मणों के साथ तपश्चरण करने लगे। दोनों भ्राताओं ने घातियाकर्मों का नाश कर अनेक भव्यजीवों को धर्मोपदेश दिया और अन्त में समस्त कर्मों को विनष्ट कर मोक्ष प्राप्त किया। उन पाँच सौ ब्राह्मणों में से अनेक सर्वार्थसिद्धि में और अनेक स्वर्ग में उत्पन्न हुए। सत्य है, तपश्चरण के द्वारा सब कुछ सम्भव है।

गौतम गणधरस्वामी के गुणों का वर्णन करना, जब बृहस्पति के लिए भी सम्भव नहीं, तब भला मैं अल्पज्ञानी उनके गुणों का वर्णन कैसे कर सकता हूँ। जिनके धर्मोपदेश को श्रवण कर अनेक भव्यजीव मोक्षगामी हुए और आगे भी होते रहेंगे, उन्हें मैं बारबार नमस्कार करता हूँ। गौतमस्वामी की स्तुति कर्मों को नष्ट करने तथा अनन्त सुख प्रदान करनेवाली है। वह मोक्ष प्राप्ति में सहायक हो।

❁❁❁

गौतमस्वामी का जीव प्रथम विशालाक्षी नाम की रानी के पर्याय में था, पुन: नरकगामी हुआ। वहाँ से निकलकर विलाव, सूकर, कुत्ता, मुर्गा और पुन: शूद्र कन्या के रूप में हुआ। उसने व्रत के प्रभाव से ग्रह स्वर्ग में देवत्व की प्राप्ति की। वहाँ से आकर ब्राह्मण

का पुत्र गौतम हुआ और उसके पाँच सौ शिष्य हुए। सत्य है, धर्म के प्रभाव से क्या नहीं होता है। भगवान महावीरस्वामी के समवसरण में मानस्तम्भ को देखकर गौतम का सारा अभिमान चूर हो गया। उसने भगवान के समीप जिन-दीक्षा ग्रहण कर ली। अन्त में वे समस्त परिग्रहों को त्यागकर महावीरस्वामी के प्रथम गणधर हुए। उन्होंने सन्ताप नाशक और भव्य जीवों को सुख प्रदान करनेवाली धर्म की वृद्धि की अर्थात् धर्मोपदेश दिया। जिन्हें इन्द्र, नरेन्द्र नमस्कार करते हैं, उन्हें मैं हृदय से नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने कर्मरूपी शत्रुओं को विनष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त किया। अपनी दिव्य वाणी के द्वारा जिन्होंने राजाओं और मनुष्यों को धर्मोपदेश दिया, जो चैतन्य अवस्था धारण कर मोक्षगामी हुए, वे श्री गौतमस्वामी जीवों के अनुकूल स्थायी मोक्ष सुख प्रदान करें। जिनेन्द्रदेव की वाणी से प्रकट हुआ जैनधर्म, सर्वोत्तम पद प्रदान करनेवाला है। रूप, तेज, बुद्धि देनेवाला है तथा सर्वोत्तम विभूतियाँ—भोगोपभोग की सामग्रियाँ तथा स्वर्ग-मोक्षादि की प्राप्ति करनेवाला है, अतएव भव्य जीवों को चाहिए कि वे जैनधर्म को धारण करें।

समस्त पापों को नाश करनेवाले श्री नेमिचन्द मेरे इस गच्छ के स्वामी हुए। ये यशकीर्ति अत्यन्त ख्यातनामा हुए। अनेक भव्यजन और राजा उनकी सेवा करते थे। उनके पट्ट पर श्री भानुकीर्ति विराजित हुए। वे सिद्धान्त शास्त्र के पारंगत, कामविजयी, प्रबल प्रतापी और शान्त थे। उन्होंने क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों पर विजय प्राप्त की थी। उनके पट्ट पर, न्यायाध्यात्म, पुराण, कोष, छन्द, अलंकार आदि अनेक शास्त्रों के ज्ञाता श्री भूषण मुनिराज

विराजमान हुए। वे आचार्यों के सम्प्रदाय में प्रधान थे। उनके पट्ट पर श्री धर्मचन्द्र मुनिराज विराजे। वे भारती गच्छ के दैदीप्यमान सूर्य थे। महाराज रघुनाथ के राज्य में महाराष्ट्र नाम का एक छोटा-सा नगर है। वहाँ ऋषभदेव का एक जिनालय है, जो पूजा-पठ आदि महोत्सव से सदा सुशोभित रहता है। धर्मात्मा मनुष्य योगिराज सदा उसकी सेवा में लीन रहते हैं। उसी जिनालय में बैठकर विक्रम संवत् १७२६ की ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया के दिन—शुक्र के शुभ स्थान में रहते हुए, अनेक आचार्यों के अधिपति श्रीधर्मचन्द्र मुनिराज ने भक्ति के वश हो गौतमस्वामी के शुभ चरित्र की रचना की। हमारी यही भावना है कि इस चरित्र के द्वारा भव्यप्राणियों का सदा कल्याण होता रहे।

॥ समाप्त ॥